सरसों की मुख्य किस्में

गिरीराज

भारत सरसों 1

पूसा विजय

पूसा सरसों 30

Printed by : Print O Land # 0141-2210132

भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान

अविकानगर - 304501, मालपुरा (टोंक), राजस्थान

फोन : 01437-220137 फैक्स : 01437-220163

वेबसाइट : http://www.cswri.res.in

सरसों की उन्नत खेती एवं इसके भूसे का पशुधन हेतु उपयोग

फार्मर फर्स्ट प्रोग्राम के अंतर्गत प्रकाशित

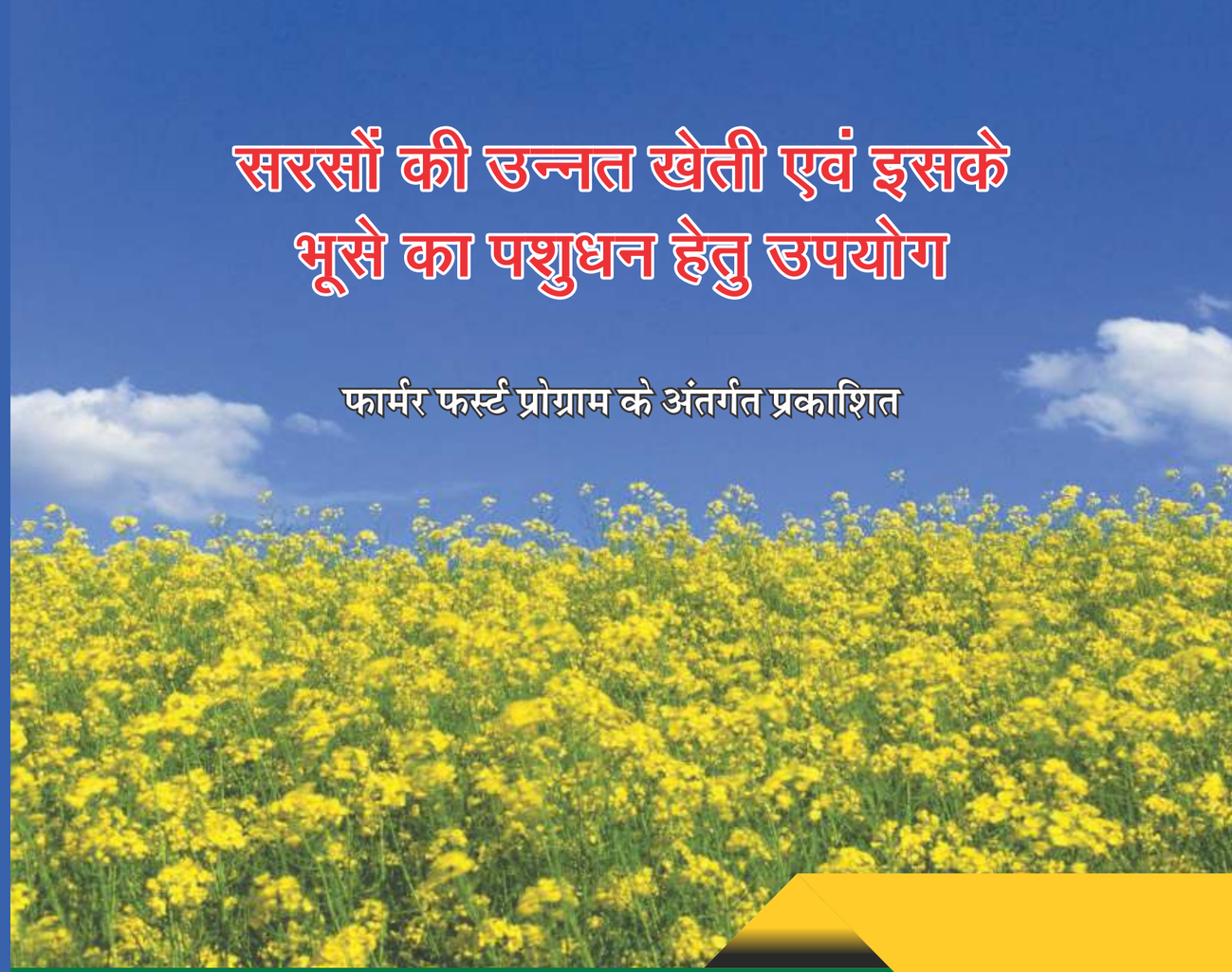

राज कुमार
एस.सी. शर्मा
आर्तबन्धु साहु
रामधन घसवा

रंगलाल मीणा

अरुण कुमार तोमर

एल.आर. गुर्जर
एस.के. संख्यान
बी.एस. साहू
रमेश कुमार गियाड

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्

केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर

केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण राज्य मंत्री, भारत सरकार माननीय श्री गजेन्द्र सिंह शेखावत जी
दिनांक 08 दिसम्बर, 2017 को फार्मर फर्स्ट प्रोग्राम के गांव चोसला में किसानों के साथ वार्ता करते हुए

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर के निदेशक डॉ. अरुण कुमार तोमर जी
दिनांक 08 दिसम्बर, 2017 को राष्ट्रीय भेड़ एवं ऊन मेला में किसानों को सम्बोधित करते हुए

चित्र (क) ओरोबैंकी से संक्रमित सरसों का खेत। चित्र (ख) ओरोबैंकी के चुषकांग द्वारा सरसों की जड़ों पर संक्रमण

सरसों की मुख्य बीमारियाँ

सफेद रोली

मृदुरोमिल आसिता

तना गलन

सरसों के मुख्य कीट

पेंटेड बग

एफिड

बिहार हेयरी केटरपिलर

सरसों की उन्नत खेती एवं इसके भूसे का पशुधन हेतु उपयोग

फार्मर फर्स्ट प्रोग्राम के अंतर्गत प्रकाशित

रंगलाल मीणा

राज कुमार
एस.सी. शर्मा
आर्तबन्धु साहु
रामधन घसवा

एल.आर. गुर्जर
एस.के. संख्यान
बी.एस. साहू
रमेश कुमार गियाड

अरुण कुमार तोमर

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर

बुलेटिन नं. 2017 / 96

भा.कृ.अनु.प. नई दिल्ली के फार्मर फर्स्ट प्रोग्राम शीर्षक :– Participatory agricultural development for livelihood security and economic empowerment of farmers in semi-arid region of Rajasthan के अंतर्गत प्रकाशित

प्रकाशन

निदेशक

भा.कृ.अनु.प. – केन्द्रीय भेड़ व ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर

प्रकाशन की दिनांक : 22 / 02 / 2018

विस्तृत जानकारी के लिए

दूरभाष नं. 01437 220137, फैक्स नं. 01437 220162

वेबसाइट : www.cswri.res.in

ई–मेलः cswriavikanagar@yahoo.com

© ICAR-CSWRI, Avikanagar

साईटेशन :– रंगलाल मीणा, राज कुमार, एल.आर. गुर्जर, एस.सी. शर्मा, आर्तबन्धु साहु, एस.के. संख्यान, बी.एस. साहू, रामधन घसवा, रमेश कुमार गियाड, अरुण कुमार तोमर 2018, सरसों की उन्नत खेती एवं इसके भूसे का पशुधन हेतु उपयोग। बुलेटिन नं. 2017 / 96 केन्द्रीय भेड़ एवं अनुसंधान संस्थान, अविकानगर। पेज नं. 1–31।

भूमिका

सरसों दुनिया में खाद्य तेल आपूर्ति करने वाली तीसरी महत्वपूर्ण तिलहनी फसल है। सरसों के पौधे का हर हिस्सा मानव आजीविका के लिए महत्वपूर्ण है। सरसों के बीज व तेल उत्पादन में क्रमशः 12 और 8.5 प्रतिशत हिस्से के साथ भारत संसार का तीसरा सबसे बड़ा सरसों उत्पादक देश है। वर्ष 2016–2017 के दौरान देश में सरसों का उत्पादन 8.0 मिलियन टन रहा जो 6.2 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल से 1281 किलोग्राम / हेक्टेयर उत्पादकता की दर से प्राप्त हुआ। वर्तमान समय में भारत अपनी आबादी की खाद्य तेलों की वार्षिक आवश्यकता की मांग आपूर्ति का आधे से ज्यादा हिस्सा आयात के जरिये पूरा कर रहा है तथा अभी भारत संसार का सबसे बड़ा खाद्य तेल आयातक देश है। वर्ष 1960–61 के दौरान भारत मे प्रति व्यक्ति खाद्य तेल की उपलब्धता 3.2 किलोग्राम थी जो बढ़कर वर्ष 2000–2001 के दौरान 8.2 किलोग्राम हुई व वर्ष 2010–2011 के दौरान 13.0 किलोग्राम हो गई व वर्ष 2015–2016 के दौरान 17.7 किलोग्राम हो गई है। तथा अनुमान है कि वर्ष 2030 तक प्रति व्यक्ति खाद्य तेल की मांग इसी प्रकार तीव्रता से बढ़ती रहेगी। भारत में बढ़ती आबादी की खाद्य तेल के मांग–आपूर्ति के अंतर को कम करने के लिए सरसों की फसल एक बेहतर विकल्प है। देश मे सरसों की खेती, उत्तर–पूर्वी / उत्तर–पश्चिमी पहाड़ियों से लेकर दक्षिण में डेक्कन पठार तक विभिन्न कृषि–जलवायु परिस्थितियों में बारानी और सिंचित भूमियों पर एकल फसल या मिश्रित फसल प्रणाली के रूप में की जाती है। सरसों की खेती कृषकों के लिए बहुत लोकप्रिय होती जा रही है क्योंकि इससे कम सिंचाई व लागत से अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त हो रहा है। परन्तु दूसरे देशों की तुलना में भारत में सरसों का उत्पादन प्रति हेक्टेयर बहुत कम पाया जाता है। इसका मुख्य कारण सरसों की फसल में उचित सस्य प्रौद्योगिकी न अपनाना है जिससे पौधे में पोषक तत्व उपयोग क्षमता, जल उपयोग क्षमता तथा ऊष्मा उपयोग क्षमता घट जाती है साथ ही साथ फसल में रोग एवं कीट का प्रकोप भी बढ़ जाता है। वर्तमान मे देश के 70 प्रतिशत से अधिक किसान उन्नत किस्मों के बीजों का उपयोग नहीं करके स्वयं का या दूसरे किसानों द्वारा उत्पादित फसलों के बीज को ही अगले साल बीज के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों के निष्कर्षों में यह पाया गया है कि केवल उन्नत किस्मों के बीजों के उपयोग करने से सरसों की उत्पादकता 15–20 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है।

देश में हर साल लगभग 28 मिलियन टन सरसों के भूसे का उत्पादन होता है तथा इस भूसे का लगभग आधा हिस्सा राजस्थान में उत्पादन होता है। जिसका किसान कोई खास फायदा नहीं ले पाता है। प्रायः सरसों के भूसे के बारे में यह धारणा है कि इसमें पोषक तत्व कम होते हैं एवं यह कठोर, विषैला, स्वादहीन व कम पाचकता वाला होता है जिससे इसे खिलने से पशु कमजोर व बीमार हो जाते हैं। इस कारण किसान सरसों के भूसे को ऐसे ही अपव्यय कर देते हैं। किसान सरसों के भूसे को या तो खुद जला देता है या मुफ्त में / बहुत कम कीमत पर औद्योगिक इकाई वालों को ईधन के लिए बेच देते हैं। राजस्थान जैसा राज्य जहाँ किसान की अर्थव्यवस्था प्रमुख रूप से पशुपालन पर निर्भर है एवं हर दूसरे या तीसरे साल सूखा पड़ता है। तथा सूखे के कारण पशुपालकों को चारे के आभाव में अपने उत्पादक पशुओं को मजबूरी में सस्ती दरों पर बेचना पड़ता है। जिससे कभी–कभी छोटे एवं मध्यम वर्ग के किसानों की अर्थव्यवस्था चरमरा जाती है। इन परस्थितियों में जहाँ अन्य चारे की उपलब्धता नहीं हो वहां सरसों का भूसा पशुओं के लिये चारे का अच्छा विकल्प हो सकता है। सरसों का भूसा प्रायः किसान को मार्च–अप्रैल में मिलता है एवं इसी समय से किसान के पास सूखे चारे की कमी होना प्रारंभ होती है। सरसों के भूसे को पशु चारे में प्रयोग करने की परियोजना पर भाकृअनुप–केंद्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर के पशु पोषण विभाग के शोध एवं अनुभव के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि सरसों के भूसे में ऐसा कोई भी विषैला या हानिकारक तत्व उपस्थित नहीं है जो कि पशुओं के लिए नुकसानदायक हो। सरसों का भूसा स्वादहीन एवं कम पाचकता वाला होता है जिस कारण इसे पशु कम खाते हैं। इस समस्या के समाधान के लिए संस्थान ने कई तकनीकियां विकसित की हैं जिनके प्रयोग से सरसों के भूसे की पाचकता एवं स्वाद बढाया जा सकता है। जिनका विस्तार में विवरण इस पुस्तिका में किया गया है। हमें पूर्ण आशा है कि सरसों की उन्नत खेती एवं इसके भूसे का पशुधन हेतु उपयोग पुस्तिका किसानों को सरसों की खेती एवं इसके भूसे का उचित उपयोग की प्रासंगिक जानकारी उपलब्ध करायेगी।

लेखकगण

अनुक्रमणिका

क्रमांक	अध्याय	पेज न.
1.	परिचय	1–1
2.	वर्गीकरण	1–2
3.	जलवायु	2–2
4.	फसल चक्र	2–2
5.	प्रजातियों का चुनाव तथा बुवाई का समय	2–3
6.	सरसों की फसल पर मौसम की विविधता का प्रभाव	3–4
7.	सरसों की उपयुक्त किस्में	4–8
8.	भूमि का चुनाव व तैयारी	8–8
9.	बीज की मात्रा, बुआई की विधि और उपचार	8–9
10.	खाद और उर्वरक	9–9
11.	सरसों की फसल में शाखाओं की छँटाई एक लाभदायी प्रौद्योगिकी	9–10
12.	सिंचाई	10–10
13.	खरपतवार प्रबंधन	10–15
14.	फसल सुरक्षा	15–15
14.1	कीट	15–18
14.2	रोग	18–21
15.	सरसों की फसल मे पाला का प्रबंधन	21–23
16.	कटाई मढ़ाई	23–23
17.	उपज	23–23
18.	बीज के लिए प्रसंस्करण	23–23
19.	सरसों के भूसे से कार्बनिक खाद बनाना	23–23
20.	सरसों के भूसे का पशु आहार में उपयोग	23–30
21.	संदर्भ	30–31

1. परिचय

सरसों, रबी मौसम की एक महत्वपूर्ण तिलहनी फसल है। यह सोयाबीन और ओइलपाम के बाद दुनिया में खाद्य तेल आपूर्ति का तीसरा महत्वपूर्ण स्रोत है। सरसों के पौधे का हर हिस्सा मानव आजीविका के लिए महत्वपूर्ण है।सरसों का तेल अति प्राचीन काल से सब्जियों, खाद्य परिरक्षक और औषधीय रूप में उपयोग किया जाता रहा है। सरसों की नई पत्तियाँ हरी सब्जी बनाने के लिए उपयोग में ली जाती है जो भोजन मे सल्फर का अच्छा स्रोत है। सरसों की हरी पत्तियाँ व शाखाएँ पशुओं को खिलाने के काम आती हैं। सरसों की खल पशुओं के लिए प्रोटीन का अच्छा स्रोत है। सरसों के बीज व तेल उत्पादन में क्रमशः 12 और 8.5 प्रतिशत हिस्से के साथ भारत संसार का तीसरा सबसे बड़ा सरसों उत्पादक देश है। भारत में सरसों की खेती, उत्तर–पूर्वी/उत्तर–पश्चिमी पहाड़ियों से लेकर दक्षिण मे डेक्कन पठार तक विभिन्न कृषि–जलवायु परिस्थितियों मे बारानी और सिंचित भूमियों पर एकल फसल या मिश्रित फसल प्रणाली के रूप मे की जाती है। सरसों की खेती कृषकों के लिए बहुत लोकप्रिय होती जा रही है क्योंकि इससे कम सिंचाई व लागत से अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त हो रहा है। वर्ष 2016–2017 के दौरान सरसों 6.2 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल व 8.0 मिलियन टन उत्पादन के साथ भारत में उगाई जाने वाली प्रमुख 9 तिलहनी फसलों के कुल क्षेत्रफल और उत्पादन में क्रमशः 23.4 और 24.6 प्रतिशत हिस्सा रखती है तथा इसी वर्ष के दौरान सरसों की उत्पादकता 1281 किलोग्राम/हेक्टेयर रही है, जो कि तिलहनी फसलों की औसत उत्पादकता 1229 किलोग्राम/हेक्टेयर से 52 किलोग्राम ज्यादा रही है। राजस्थान, भारत के कुल सरसों के क्षेत्रफल व उत्पादन में क्रमशः 55 और 45 प्रतिशत हिस्सेदारी के साथ दोनों मे प्रथम स्थान रखता है। राजस्थान में सरसों की खेती मुख्य रूप से भरतपुर, सवाई माधोपुर, अलवर, टोंक, जयपुर, गंगानगर, करोली आदि जिलों में की जा रही है । वर्ष 2015–16 के दौरान राजस्थान राज्य में सरसों 25.32 लाख हेक्टेयर क्षेत्र पर बोई गई व औसत उपज 1287 किलोग्राम/हेक्टेयर के साथ राज्य में इसका कुल उत्पादन 32.57 लाख टन रहा। संसार के 7.4 प्रतिशत तिलहन उत्पादन, 5.8 प्रतिशत खाद्य तेल उत्पादन, 6.1 प्रतिशत खल उत्पादन, 3.9 प्रतिशत खल निर्यात, 11.2 प्रतिशत खाद्य तेल आयात व 9.3 प्रतिशत खाद्य तेल की खपत के साथ भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, ब्राजील और अर्जेंटीना के बाद दुनिया की 5 वीं सबसे बड़ी खाद्य तेल की अर्थव्यवस्था है। वर्तमान समय में भारत अपनी आबादी की खाद्य तेलों की वार्षिक आवश्यकता की मांग आपूर्ति का आधे से ज्यादा हिस्सा आयात के जरिये पूरा कर रहा है तथा अभी भारत संसार का सबसे बड़ा खाद्य तेल आयातक देश है। वर्ष 1960–61 के दौरान भारत में प्रति व्यक्ति खाद्य तेल की उपलब्धता 3.2 किलोग्राम थी जो बढ़कर वर्ष 2000–2001 के दौरान 8.2 किलोग्राम हुई व वर्ष 2010–2011 के दौरान 13.0 किलोग्राम हो गई व वर्ष 2015–2016 के दौरान 17.7 किलोग्राम हो गई तथा अनुमान है की वर्ष 2030 तक प्रति व्यक्ति खाद्य तेल की मांग इसी प्रकार तीव्रता से बढ़ती रहेगी। भारत में बढ़ती आबादी की खाद्य तेल के मांग–आपूर्ति के अंतर को कम करने के लिए सरसों की फसल एक बेहतर विकल्प है। तेल एवं प्रोटीन का एक महत्वपूर्ण स्रोत होने की दृष्टि से दुनिया भर में सरसों का उत्पादन बढ़ रहा है। संसार में सरसों का कुल क्षेत्रफल 6.83 मिलियन हेक्टेयर से बढ़कर 29.83 मिलियन हेक्टेयर हो गया साथ ही इसकी पैदावार 4.5 मिलियन टन से बढकर 49.82 मिलियन टन हो गयी है। पैदावार की दृष्टि से भारत विश्व में दूसरा स्थान रखता है। दूसरे देशों की तुलना में भारत में सरसों का उत्पादन प्रति हेक्टेयर बहुत कम पाया जाता है। इसका मुख्य कारण सरसों की फसल मे उचित सस्य प्रौद्योगिकी न अपनाना है जिससे पौधे में पोषक तत्व उपयोग क्षमता, जल उपयोग क्षमता तथा ऊष्मा उपयोग क्षमता घट जाती है साथ ही साथ फसल में रोग एवं कीट का प्रकोप भी बढ़ जाता है। वर्तमान में देश के 70 प्रतिशत से अधिक किसान उन्नत किस्मों के बीजों का उपयोग नहीं करके स्वयं का या दूसरे किसानों द्वारा उत्पादित फसलों के बीज को ही अगले साल बीज के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों के निष्कर्षों में यह पाया गया है कि केवल उन्नत किस्मों के बीजों के उपयोग करने से सरसों की उत्पादकता 15–20 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है।

2. वर्गीकरण

सरसों वर्ग में सम्मिलित अनेक फसलों में से तोरिया, सरसों, राई ऐसी उल्लेखनीय फसलें है जिनकी खेती राजस्थान में अत्यधिक की जाती है। तारामीरा नामक चौथी फसल भी इसी वर्ग में सम्मिलित है। विभिन्न स्थानों पर इन फसलों को अलग–अलग नामों से पुकारते हैं। तारामीरा को छोड़कर सभी जातियाँ सरसों कुल के ब्रैसिका वंश में आती हैं।

सारणी 2.1 सरसों वर्ग में सम्मिलित प्रमुख फसलें

क्रमांक	वानस्पतिक नाम	अंग्रेजी नाम	स्थानीय नाम
1	*ब्रैसिका जुन्सिया*	इन्डियन मस्टर्ड	राई, राया, लाहा
2	*ब्रैसिका जुन्सिया वैराइटी रूगोसा*	हिल मस्टर्ड	पहाड़ी राई
3	*ब्रैसिका निग्रा*	ब्लैक मस्टर्ड	बनारसी राई
4	*ब्रैसिका एल्बा*	व्हाइट मस्टर्ड	उजली राई
5	*ब्रैसिका कैम्पेस्ट्रिस वैराइटी यलो सरसों*	टरनिप रेप	पीली सरसो
6	*ब्रैसिका कैम्पेस्ट्रिस वैराइटी ब्राउन सरसों*	टरनिप रेप	भूरी सरसों
7	*ब्रैसिका कैम्पेस्ट्रिस वैराइटी येलो तोरिया*	इंडियन रेप	पीली तोरिया
8	*ब्रैसिका कैम्पेस्ट्रिस वैरायटी ब्लैक तोरिया*	इंडियन रेप	काली तोरिया या लाही
9	*इरूका सैटाइवा*	राकेट क्रेस	तारामीरा

3. जलवायु

भारत में सरसों की खेती शरद (रबी) ऋतु में की जाती है। सरसों सम–शीतोष्ण जलवायु की फसल हैं, लेकिन इसे उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में भी लगाया जा सकता है। फोटोपिरियोडिक प्रतिक्रिया के हिसाब से सरसों को लंबे दिनों वाले पोधे के रूप मे वर्गीकृत किया गया है। सरसों की फसल को विशेष रूप से फूलों के आने की अवस्था पर 18 से 25 डिग्री सेल्सियस तापमान, खुला आसमान और कम आर्द्रता की आवश्यकता होती है। फसल की वृद्धि 3 डिग्री सेल्सियस से 35 डिग्री सेल्सियस तापमान तक नहीं रुकती, पर इसकी वृद्धि के लिए 25 डिग्री सेल्सियस तापमान अनुकूलतम माना जाता है। बीज मे अधिक तेल मात्रा व अधिक उपज के लिए सरसों को ठंडा मौसम, साफ और खुले आसमान की आवश्यकता होती है। सरसों में फूल आने से पहले होने वाली वर्षा उपज को बढ़ावा देने में मदद करती हैं, पर फूल आते समय वर्षा, उच्च आर्द्रताव बादल वाला वातावरण सरसों की फसल के लिए अनुकूल नहीं होता है, क्योंकि ऐसी स्थिति ऐफिड् व व्याधियों को आमंत्रित करती है तथा परागण को कम करती है। परिणामस्वरूप फसल उपज कम हो जाती है। अत्यधिक ठंड फसल के लिए हानिकारक हैं। इससे फसल में पाला पड़ने की संभावना अधिक हो जाती है। पाला फसल को अत्यधिक हानि पहुँचाता है। पाले के कारण पौधे की फली के अन्दर बीज नष्ट हो जाते हैं। जिससे उपज में 95 प्रतिशत तक नुकसान हो जाता है। तोरिया की फसल पाले के प्रति सबसे संवेदनशील है इसलिये इसे सबसे पहले बोया जाता है और ठंड की शुरुआत से पहले काटा जाता है। सरसों की फसल को 40–100 सेमी की वार्षिक वर्षा की आवश्यकता होती है तथा यह फसल जलमग्न की अवस्था को बिल्कुल सहन नहीं करती है।

4. फसल चक्र

फसल चक्र का अधिक पैदावार प्राप्त करने, भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने तथा भूमि में कीड़े, बिमारियों एवं खरपतवार कम करने में महत्वपूर्ण योगदान होता है। एक ही खेत में लगातार दो साल तक सरसों की फसल लेने पर उस खेत में दूसरे साल वाली सरसों की फसल में बिमारियों व कीटों का खतरा बढ़ जाता है। अतः सरसों की फसल को अन्य फसलों के साथ रोटेशन में उगाना अति आवश्यक हो जाता है। राजस्थान में सरसों की खेती के लिए प्रमुख फसल चक्र निम्न हैः– पड़त–सरसों, ग्वार–सरसों, मूंग–सरसों, उड़द–सरसों, बाजरा–सरसों, ज्वार–सरसों, मक्का–सरसों, कपास–सरसों एक वर्षीय फसल चक्र तथा ज्वार/बाजरा–सरसों–मूंग/ग्वार–सरसों दो वर्षीय फसल चक्र उपयोग में लिये जा सकते हैं। बारानी क्षेत्रों में चने के साथ कतारों में सरसों उगाने से अच्छी आमदनी होती है। चने की 4 से 6 कतारों के बाद एक कतार सरसों की लगाई जाती है। सरसों की मिश्रित फसल अलसी, गेंहूँ, जौं आदि के साथ भी ली जाती है।

5. प्रजातियों का चुनाव तथा बुवाई का समय

प्रजातियों का चुनाव फसल की अवधि, बुवाई का समय तथा क्षेत्र विशेष के लिए अनुमोदन के आधार पर फसल चक्र को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए। जिन क्षेत्रों में सरसों के बाद प्याज, गेहूं, मक्का की बुवाई तथा टमाटर की रोपाई करनी है, उन क्षेत्रों में

पूसा सरसों–25 तथा पूसा सरसों–28 की बुवाई सितम्बर के प्रथम पखवाड़े में अवश्य करनी चाहिए। जिन क्षेत्रों में सरसों की बुवाई के बाद अगेता गन्ना तथा सब्जियों की बुवाई करनी है, उन क्षेत्रों में पूसा सरसों–26, पूसा सरसों–27, पूसा तारक, पूसा महक, की बुवाई सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में करनी चाहिए। जिन क्षेत्रों में सरसों के बाद मूँग की बुवाई करनी है, उन क्षेत्रों में पूसा विजय, पूसा सरसों–29, पूसा सरसों–30, गिरीराज, पूसा जयकिसान, पूसा जगन्नाथ, पूसा बोल्ड, पूसा करिश्मा, पूसा सरसों–21, पूसा सरसों–22 पूसा सरसों–24 की बुवाई अक्टूबर माह में करनी चाहिए। जिन क्षेत्रों में सरसों की बुवाई नवम्बर–दिसम्बर में की जाती है उन क्षेत्रों में अगेति प्रजातियाँ जैसे भारत सरसों–1, पूसा सरसों–25, पूसा सरसों–26, पूसा सरसों–28 को उगाना अधिक लाभप्रद रहता है। गुणवत्ता बीज उत्पादन एवं उत्पादकता की दृष्टि से उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में सभी प्रजातियों की बुवाई सामान्यतः 5 अक्टूबर से 25 अक्टूबर के बीच करनी चाहिए। लम्बी अवधि वाली प्रजातियों को अक्टूबर के प्रथम पखवाड़े में तथा कम अवधि वाली प्रजातियों को अक्टूबर के द्वितीय पखवाड़े में बुवाई करना अधिक लाभप्रद पाया गया है। अधिक लम्बी अवधि की प्रजातियों को देर से बुवाई करने पर पकने के समय अधिक तापक्रम के कारण दानों का पूर्ण विकास नही हो पाता तथा फसल में चेंपा से अधिक हानि होती है। देश के ऐसे क्षेत्र जहाँ सिंचाई के कोई साधन नहीं है उन क्षेत्रों में पूसा स्वर्णिम, भारत सरसों–1 या पूसा आदित्य की बुवाई करनी चाहिए। इन प्रजातियों की बुवाई सितम्बर के अन्त या अक्टूबर के शुरू में वर्षा आधारित या पलेवा करके करनी चाहिए। बारानी क्षेत्रों में सरसों की बुवाई 15 सितम्बर से 15 अक्टूबर तक कर देनी चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में इसकी बुवाई अधिक से अधिक अक्टूबर के अन्त कर देनी चाहिए। सरसों की बुवाई के समय औसतन तापक्रम 26–28 डिग्री सेल्सियस होना चाहिए परन्तु किसान भाई तापमान का विशेष ध्यान रखें। यदि तापमान 32 डिग्री सेल्सियस या इससे ज्यादा हो तो तापमान कम होने का इंतजार करें व तापमान 30–32 डिग्री सेल्सियस या इससे कम होने पर ही बुवाई करें। अन्यथा सरसों के बीज का उचित अंकुरण नहीं हो पायेगा और यदि अंकुरण हो भी जाता है तो बाद में सरसों के पौधे अधिक तापमान के कारण जल जाते हैं।

6. सरसों की फसल पर मौसम की विविधता का प्रभाव

कृषि उत्पादन में मौसम की मुख्य भूमिका है। कृषि उत्पादन की सफलता सामान्य मानसून एवं अनुकूल मौसम पर निर्भर करती है। कृषि जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम विविधता में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। कृषि वैज्ञानिकों द्वारा अनगिनत तकनीकियों का विकास किया जा रहा है। लेकिन इनकी सफलता असामान्य मौसम में बढ़ोत्तरी की वजह से कम हो रही है। किसी भी प्रकार के कृषि कार्य मौसम के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं। किसी भी फसल की उपज की गुणवत्ता पर मौसम की विविधता का काफी असर पड़ता है तथा इसके जैविक और भौतिक प्रक्रिया पर तापमान का बहुत असर पड़ता है। मानसून देरी से आने तथा साथ ही जल्दी खत्म होने की वजह से फसलों की बुवाई का समय बदल रहा है। ज्यादा तथा कम नमी में पौधों की बढ़ोतरी ठीक नहीं होती बालियों में दाने अच्छी तरह से नहीं भरते। अंततः दानों की कुल पैदावार गिर जाती है। मौसम की विविधता का कृषि कार्यों से काफी गहरा संबंध होता है। फसलों की पैदावार तथा गुणवत्ता पर गहरा असर पड़ता है। जलवायु परिवर्तन का भारत में उगायी जाने वाली फसलों के उत्पादन पर काफी असर पड़ता है। क्योंकि फसल को अंकुरण से लेकर पकने तक एक उपयुक्त मौसम की जरूरत पड़ती है जो कम से कम एक निश्चित अवधि तक होना आवश्यक है। लेकिन यदि अंकुरण के समय उपयुक्त तापमान नहीं मिलेगा तो अंकुरण ठीक से नहीं होगा। उदाहरण के तौर पर रबी फसल के लिए अंकुरण के दौरान 20–25 डिग्री सेल्सियस तापमान चाहिए। यदि तापमान अधिक या कम है तो अंकुरण प्रभावित होता है। अक्सर उत्तर भारत में सरसों की बुवाई का समय 1 से 15 अक्टूबर के बीच होता है और किसान यदि बिना मौसम की जानकारी लिए बुवाई करते हैं और अगर तापमान 25 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा है तो अच्छे बीज होने के बावजूद भी अंकुरण अच्छा नहीं होता और पैदावार पर असर पड़ता है। यदि किसान को तापमान की जानकारी है तो किसान बुवाई के समय को बदल सकता है और उपयुक्त तापमान तथा नमी होने पर ही फसल की बुवाई करता है तो अंकुरण अच्छा होगा। फसल में दाना बनने के दौरान तापमान में अचानक वृद्धि होने से अनाज जल्दी पकने लगता है जिससे दाना बनने की अवधि में कमी आ जाती है जिससे उत्पादन में कमी आती है। ज्यादा तापमान होने से दाने की गुणवत्ता पर असर पड़ता है क्योंकि अधिक तापमान होने से वाष्पोत्सर्जन में अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है और शेष ऊर्जा में कमी होने से दाने कमजोर बनते हैं तथा पैदावार में कमी आती है। यदि तापमान सामान्य से अधिक हो जाता है तो पौधों में वाष्पन की क्रिया बढ़ जाती है और पौधों में पानी की कमी होने से पौधे पीले पड़ने लगते हैं और अंततः सूख जाते हैं। किसी भी फसल के जैविक और भौतिक प्रक्रिया पर तापमान का बहुत असर पड़ता है। उदाहरण के तौर पर सरसों को सर्दियों में बोया

जाता है। यदि फली तथा बीज बनने के दौरान 2–3 डिग्री सेल्सियस तापमान ज्यादा हो जाता है तो फसल की उपज में भारी कमी आती है। बुवाई का समय फसल में वनस्पति और प्रजनन चरण की लंबाई को संशोधित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मौसम परिवर्तन के प्रभाव को कम करने हेतु बुवाई के समय में संशोधन एक प्रभावी विकल्प हो सकता है। जिससे फसल के विकास को अनुकूल किया जा सकता है। किसी भी फसल के अधिकतम उपज के लिए हम फसल मौसम तथा कीट के आपसी निर्भरता के आधार पर किसी फसल की बुवाई का उचित समय निर्धारित कर सकते हैं।

7. सरसों की उपयुक्त किस्में

सरसों की निम्न किस्मों को प्रमुख रूप से अगेती, सामान्य समय व देर से बुवाई वाले, सिंचित, बारानी तथा लवणीय व क्षारीय क्षेत्रों में पैदावार के लिए वर्णित किया गया है। किसान भाईयों को भी अपनी मिट्टी के प्रकार, सिंचाई की उपलब्धता तथा बुवाई के समय के आधार पर उपयुक्त किस्मों का चयन करना चाहिए। किस्मों की औसत उपज, तेल अंश, परिपक्वता आदि प्राप्त करने के लिए उन्नत तकनीकों को अपनाना आवश्यक है।

1. पूसा विजय (एन.पी.जे.–93)

यह प्रजाति 2008 वर्ष में दिल्ली तथा राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्रों के लिए विमोचित की गई है। लेकिन इसकी अधिक पैदावार की दृष्टि से इसकी लोकप्रियता उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में भी तेजी से बढ़ रही हैं। यह प्रजाति सिंचित क्षेत्रों में समय से बुवाई के लिए सर्वोत्तम है। इसकी औसत पैदावार 25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह उच्च तापक्रम, लवण्यता व गिरने के प्रति सहनशील है तथा इसके पौधों की उँचाई 170–180 सेन्टीमीटर तक होती है। यह मोटे दाने वाली (6 ग्राम/1000 दाने) प्रजाति हैं। जिनमें तेल की औसत मात्रा 38.5 प्रतिशत है। यह किस्म बुवाई के 140 दिन बाद पककर तैयार हो जाती है। यह सफेद रतुआ, चूर्ण फफूंदी, मृदुरोमिल आसिता तथा स्क्लेरोटीनिया सड़न के प्रति सहिष्णु है।

2. पूसा जगन्नाथ (वी.एस.एल.–5)

इस प्रजाति का विमोचन केन्द्रीय प्रजाति विमोचक समिति द्वारा वर्ष 1999 में उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश छत्तीसगढ़ और राजस्थान राज्यों के लिए किया गया है। यह समय से सिंचित क्षेत्रों में बुवाई के लिए उपयुक्त है। इसकी औसतन पैदावार 25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इसका दाना मध्यम (5.5 ग्राम/1000) आकार का होता जिसमें तेल की मात्रा 40 प्रतिशत है। यह बुवाई के 125 दिन में तैयार हो जाती है।

3. पूसा बोल्ड

इस प्रजाति का विमोचन 1985 में दिल्ली व पूर्वी राज्यों के लिए किया गया है परन्तु अच्छे प्रदर्शन व लोकप्रियता के कारण इसे उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, पश्चिमी बंगाल, बिहार व उड़ीसा राज्यों के लिए भी अनुमोदित किया गया। इसके पौधों की औसत ऊँचाई 180 सेन्टीमीटर होती है। इसकी फलियाँ लम्बी तथा पकने पर चटखती नही हैं। यह समय पर सिंचित क्षेत्रों मे बुआई के लिए उपयुक्त है। यह बुवाई के 140 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसके दानों में तेल की मात्रा 40 प्रतिशत व औसत पैदावार 19 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

4. पूसा जय किसान (बायो–902)

पादप जैव प्रोद्योगिकी द्वारा विकसित इस प्रजाति का विमोचन केन्द्रीय प्रजाति समिति द्वारा वर्ष 1993 में राजस्थान, गुजरात और पश्चिमी महाराष्ट्र के सिंचित क्षेत्रों के लिए किया गया है। यह समय से बुवाई के लिए उपयुक्त है। इसकी औसतन पैदावार 25.0 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इसका दाना मध्यम (6.8 ग्राम/1000) आकार का व कालापन लिये हुये भूरे रंग का होता है जिसमें तेल की मात्रा 40 प्रतिशत है यह बुवाई के 125 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसत उँचाई 175–190 सेन्टीमीटर है। फसल पकने पर फलियों के दाने झड़ते नहीं है।

5. पूसा तारक (ई.जे.–13)

यह अगेती प्रजाति है और इसे राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के लिए वर्ष 2009 में विमोचित किया गया। इसकी औसत पैदावार 19.24 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इसकी बुवाई सितम्बर से दिसम्बर तक कर सकते हैं। इसकी अगेती फसल की कटाई के बाद प्याज व

चन्ने की खेती कर सकते हैं। इसमें तेल की औसत मात्रा 40.1 प्रतिशत है। यह पूरी तरह पक जाने पर भी नहीं झड़ती है। यह बुवाई के 115–120 दिन में पककर तैयार हो जाती है।

6. पूसा महक (जे.डी.–6)

इस प्रजाति का विमोचन वर्ष 2005 में केन्द्रीय प्रजाति विमोचन द्वारा अगेती प्रजाति के रूप में किया गया तथा बिहार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, असम, दिल्ली तथा राष्ट्रीय राजधानी के सिंचित क्षेत्रों में उगाने के लिए अनुकूल पाया गया है। इसकी औसत पैदावार 17.5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इसमें तेल की औसत मात्रा 40 प्रतिशत है और बुवाई के 115–120 दिन में पककर तैयार हो जाती है। देश के उत्तर पूर्वी राज्यों में धान की कटाई के बाद इस प्रजाति को बोया जा सकता है। इसकी सितम्बर बुवाई के बाद उत्तरी भारत में प्याज व चने की खेती की जा सकती है।

7. पूसा अग्रहणी (एस.ई.जे.–2)

इस प्रजाति का विमोचन 1998 में पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा तथा असम के लिए किया गया। यह सिंचित अवस्था में अगेती तथा पछेती बुवाई के लिए उपयुक्त है। इसकी औसतन पैदावार 17.5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह कम अवधि (110 दिन) में पकने वाली राया की प्रथम प्रजाति है तथा तोरिया का एक अच्छा विकल्प है। इसे देश के उत्तर–पूर्वी व पूर्वी राज्यों में धान की फसल के बाद बोया जा सकता है। इसका दाना मध्यम (4.5 ग्राम/1000) आकार का है जिसमें तेल की मात्रा 39 प्रतिशत है। फसल पीली पड़ने पर तुरन्त काटकर तिरपाल पर एकत्र करके सुखाकर मढ़ाई करनी चाहिए अन्यथा देर से कटाई करने पर झड़ने का खतरा रहता है।

8. पूसा सरसों–21 (एल.ई.एस.–127)

यह प्रजाति वर्ष 2007 में राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, जम्मू कश्मीर व हिमाचल प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश तथा छत्तीसगढ़ में उगाने के लिए जारी की गई थी। यह कम ईरूसिक अम्ल (2 प्रतिशत से कम) वाली प्रजाति है। यह सिंचित क्षेत्रों में तथा समय पर बुवाई के लिए उपयुक्त है। इसमें तेल की औसत मात्रा 36 प्रतिशत है। इसकी औसत पैदावार 21.10 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

9. पूसा सरसों–22 (एल.ई.टी.–17)

यह प्रजाति वर्ष 2008 में गुजरात व पश्चिमी महाराष्ट्र के सिंचित क्षेत्रों के लिए समय पर बुवाई के लिए अनुमोदित की गई थी। यह कम ईरूसिक अम्ल (2 प्रतिशत से कम) वाली प्रजाति है। इसकी पैदावार 20.7 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति 142 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसके 1000 दानों का वजन 3.6 ग्राम होता है तथा इसकी पैदावार क्षमता 27.50 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

10. पूसा सरसों–24 (एल.ई.टी.–18)

यह प्रजाति वर्ष 2008 में राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, जम्मू कश्मीर व हिमाचल प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सिंचित क्षेत्रों लिए जारी की गई थी। यह समय पर बोने के लिए उपयुक्त किस्म है तथा 20.2 क्विंटल प्रति हेक्टेयर पैदावार देती है। यह बुवाई के 140 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसके 1000 दानों का वजन 4 ग्राम होता है। यह कम इरूसिक अम्ल (2 प्रतिशत से कम) की प्रजाति है।

11. सरसों–25 (एन.पी.जे.–112)

इसका विमोचन वर्ष 2010 में केन्द्रीय प्रजाति विमोचन समिति द्वारा राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, जम्मू कश्मीर व हिमाचल प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लिए किया गया था। यह सिंचित अवस्था में अगेती बुवाई के लिए उपयुक्त है। इसकी औसत पैदावार 14.7 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह सितम्बर (खरीफ की फसल के काटने के बाद) से मध्य दिसम्बर तक बुवाई के लिए उपयुक्त है। इसकी ऊँचाई 110 से 125 सेन्टीमीटर होती है। यह बारीक दाने वाली प्रजाति है। यह 107 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा इसके दानों में तेल का औसत 39.6 प्रतिशत है।

12. पूसा सरसों–26 (एन.पी.जे.–113)

यह बारीक दाने वाली अगेती प्रजाति है। इसके पौधों की ऊँचाई 110–125 सेमी. होती है। यह बुवाई के 126 दिन में पककर तैयार

हो जाती है। इसकी औसत पैदावार 17.5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर हैं। इस प्रजाति को दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा के सिंचित क्षेत्रों में मध्य सितम्बर में बुवाई करके दिसम्बर के अंत तक काटकर गेहूं, प्याज तथा मक्का आदि की फसल लेने के लिए अधिक उपयुक्त है।

13. पूसा सरसों–27 (ई.जे.–17)

यह प्रजाति 2010 में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तराखण्ड तथा राजस्थान के कोटा क्षेत्रों में उगाने के अनुकूल है। यह अगेती बुवाई सितम्बर के लिए अनूकूल है। इसकी औसतन पैदावार 15.35 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इसमें 41.7 प्रतिशत तेल पाया जाता है। यह बुवाई के 118 दिन में पककर तैयार हो जाती है। यह अंकुरण के समय तथा पकने के समय अधिक तापक्रम के प्रति सहनशील है। यह तोरिया का एक अच्छा विकल्प है। यह सितम्बर से मध्य दिसम्बर तक फसल चक्र के अनुकूल है।

14. पूसा सरसों–28 (एन.पी.जे.–124)

यह प्रजाति 2010 में हरियाणा, पंजाब, राजस्थान व जम्मू कश्मीर के मैदानी क्षेत्रों दिल्ली एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अगेती बुवाई के लिए अनुमोदित की गई। इसकी औसतन पैदावार 20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह बुवाई के 107 दिन में पककर तैयार हो जाती है। यह उच्च तापमान को सहन करने में सक्षम है। इसमें 41.5 प्रतिशत तेल पाया जाता है। यह सिंचित क्षेत्रों में तोरिया का एक अच्छा विकल्प है। यह सितम्बर से मध्य दिसम्बर तक फसल चक्र के लिए अनुकूल है।

15. पूसा सरसों–29 (एल.ई.टी.–36)

यह 2013 में पंजाब तथा हिमाचल प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों के लिए अनुमोदित की गई। यह कम ईरूसिक अम्ल (2 प्रतिशत से कम) वाली प्रजाति है। यह सिंचित क्षेत्रों में 21.69 क्विंटल प्रति हेक्टेयर पैदावार देती है। इसमें तेल की मात्रा 37.2 प्रतिशत तथा बुवाई के 143 दिन में पककर तैयार हो जाती है। यह अंकुरण एवं पकने के समय अधिक तापमान के प्रति सहनशील है।

16. पूसा सरसों–30 (एल.ई.एस.–43)

यह प्रजाति 2013 में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व उत्तराखण्ड के मैदानी क्षेत्रों तथा पूर्वी राजस्थान में समय से सिंचित क्षेत्रों में बुवाई के लिए जारी की गई। इसके 1000 दानों का भार 5.38 ग्राम तथा इसमें ईरूसिक अम्ल (2 प्रतिशत से कम) होता है। इसमें 37.7 प्रतिशत तेल होता है तथा यह बुवाई के 137 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसतन पैदावार 18.24 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

17. पूसा करिश्मा (एल.ई.एस.–39)

यह वर्ष 2005 में अनुमोदित कम ईरूसिक अम्ल वाली प्रथम प्रजाति है। यह सिंचित क्षेत्रों में तथा समय पर बुवाई के लिए उपयुक्त है। यह 22.0 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक पैदावार देती है। यह राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के लिए उपयुक्त है।

18. पूसा स्वर्णिम (आई.जी.सी.–01)

यह करण राई की वर्ष 2003 मे अनुमोदित प्रजाति है जो राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर व उत्तराखण्ड के सिंचित तथा बारानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। यह सिंचित अवस्था में 16.7 क्विंटल तथा बारानी क्षेत्रो में 14 क्विंटल प्रति हेक्टेयर पैदावार देती है। इसमे तेल की मात्रा 40.43 प्रतिशत तक होती है। इस किस्म में उच्च दर्जे की सूखा सहिष्णुता है तथा सफेद रतुआ के प्रति उच्च प्रतिरोधकता है। यह लम्बी अवधि की प्रजाति है।

19. पूसा आदित्य (एन.पी.सी.–9)

यह करण राई की प्रमुख प्रजाति है जिसे वर्ष 2006 में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्रा दिल्ली के लिए बारानी अवस्थाओं में समय पर बुवाई के लिए विमोचन किया गया। इसकी औसत पैदावार 14.00 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति बारानी अवस्थाओं में एवं कम उपजाऊ भूमि में अच्छी पैदावार देती है तथा डाउनी मिल्डयू व सफेद रतुआ रोग के प्रतिरोधी है। यह झुलसा तना गलन, पाउड्री मिल्डयू के प्रति भी सहिष्णु और चेंपा के प्रति सहनशील है। इस प्रजाति के दाने बहुत छोटे (4 ग्राम/1000) आकार के हैं। इसमें तेल की मात्रा 40 प्रतिशत होती है। इस प्रजाति के पौधों की औसत उँचाई 200–230 सेन्टीमीटर होती है। यह विपरीत परिस्थितियों में अच्छी उपज देने वाली करण राई की महत्वपूर्ण प्रजाति है।

20. टी–59 (वरूणा)

मध्यम कद वाली इस किस्म के पौधे की शाखाऐं फैली हुई होती है। यह 125–130 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी फलियां चौड़ी व छोटी होती है। दाने मोटे तथा काले रंग के होते हैं। औसतन 10–12 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज होती है। तेल की मात्रा 36 प्रतिशत होती है। यह सफेद रतुआ रोग के प्रति संवेदनशील है लेकिन मोयला पूसा कल्याण की तुलना में कम लगता है।

21. पी आर–15 (क्रांति)

असिंचित क्षेत्रों में बुवाई के लिये उपयुक्त इस किस्म के पौधे 155–200 सेन्टीमीटर ऊंचे, पत्तियाँ रोयेंदार, तना चिकना और फूल हल्के पीले रंग के होते हैं। इसका दाना मोटा, कत्थई एवं इसमें तेल की मात्रा 40 प्रतिशत होती है। 125–130 दिन में पक जाती है। वरूणा की अपेक्षा अल्टरनेरिया रोग व पाले के प्रति अधिक सहनशील है। तुलासिता व सफेद रोली रोधक है।

22. भारत सरसों–1 (एन.आर.सी.एच.बी.–101)

यह किस्म देर से बोई जाने वाली एवं सिंचित क्षेत्र के लिये उपयुक्त है। इसकी ऊँचाई 170–200 सेन्टीमीटर होती है। यह किस्म 105 से 135 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इस किस्म में तेल की मात्रा 34 से 42 प्रतिशत होती है। इस किस्म की उपज 13 से 15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

23. आर.एच.–749 (2013)

यह किस्म 146–148 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसमें तेल की मात्रा 39 प्रतिशत होती है। इस किस्म की उपज 24 से 28 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म सिंचित क्षेत्र के लिये उपयुक्त है।

24. लक्ष्मी (प्रोविजनल)

यह किस्म 140 से 150 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा इसके पौधे की औसत ऊँचाई 180–190 सेन्टीमीटर तथा अधिक फलियों वाली इसकी औसत उपज 22–23 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। तेल की मात्रा 40–41 प्रतिशत तथा 1000 दानों का भार 5–6 ग्राम होता है।

25. वसुन्धरा (आर.एच.–9304)

समय पर एवं सिंचित क्षेत्र में बोई जाने वाली इस किस्म का पौधा 180 से 190 सेन्टीमीटर ऊँचा, पत्ती अनियंत्रित गहरे दांतेयुक्त, पत्ती की निचली सतह हल्की रोमयुक्त एवं सफेद मध्यम शिरा होता है। फली 4.7–5 सेन्टीमीटर लम्बी एवं प्रति फली में 14–16 बीज होते हैं। 130–135 दिन में पकने वाली इस किस्म की पैदावार 25–27 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक होती है। यह किस्म आडी गिरने तथा फली छिटकने से प्रतिरोधी है तथा सफेद रोली से मध्यम प्रतिरोधी है।

26. एन.आर.सी.डी.आर.–2 (2007)

यह किस्म 131–156 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसमें तेल की मात्रा 36.5 से 42.5 प्रतिशत होती है। इस किस्म की उपज 19 से 26 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म सिंचित एवं असिंचित दोनों क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है।

27. स्वर्ण ज्योति (आर.एच.–9802)

देर से बोई जाने वाली एवं सिंचित क्षेत्र के लिये उपयुक्त इस किस्म का पौधा मध्यम ऊँचाई का (130–140 सेन्टीमीटर) होता है। 35–40 दिन में फूल आने वाली यह किस्म 130–135 दिन तक पक जाती है। इसकी पत्तियाँ तीखी, नोकयुक्त, तना हरा, प्राथमिक शाखाएँ 8–10, फली 3.5–4 सेन्टीमीटर. लम्बी, 10–12 बीज प्रति फली, 1000 दानों का वजन 4.0 से 5 ग्राम होता है। तेल की मात्रा 39–42 प्रतिशत होती है। यह किस्म 15 नवम्बर तक बोई जाने पर भी अच्छी पैदावार देती है। इसकी औसत पैदावार 13–15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह आडी गिरने एवं फली छिटकने से प्रतिरोधी, पाले के लिये मध्यम सहनशील व सफेद रतुआ से मध्यम प्रतिरोधी है।

28. आर.आर.एन.–573 (2013)

यह समय से बुवाई के लिये उपयुक्त किस्म है, पौधा लगभग 168 से 176 सेन्टीमीटर ऊँचा व इसकी पत्तियाँ चौड़ी, फलियों की नोंक एक तरफ मुड़ी हुई होती है। फसल की परिपक्वता अवधि 136 से 138 दिन है। इसके 1000 दानों का भार 44 ग्राम है तथा

तेल की मात्रा 41.4 प्रतिशत है। यह किस्म रोग एवं कीटों के प्रति मध्यम सहिष्णु है। इसकी औसत उपज 20–22 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

29. गिरीराज (डी.आर.एम.आर.आई.जे.–31)

यह किस्म 137–153 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसमें तेल की मात्रा 42 प्रतिशत होती है। इस किस्म की उपज 22 से 27 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म सिंचित एवं असिंचित दोनों क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है।

30. आर.एच.–406 (2013)

यह किस्म 145–150 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसमें तेल की मात्रा 40 प्रतिशत होती है। इस किस्म की उपज 22 से 23 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म असिंचित क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है।

गिरीराज

भारत सरसों–1

8. भूमि का चुनाव व तैयारी

सरसों की खेती के लिए दोमट व हल्की बलुई भूमि जिसका पी.एच. मान 7 से 8 के बीच हो तथा जिसमें पर्याप्त जीवांश हो सर्वोत्तम रहती है एवं अच्छे जल निकास वाली मिट्टी होनी चाहिए। मिट्टी लवणीय व क्षारिय न हो तो ठीक रहती है। सरसों के लिए मिट्टी भुरभुरी होनी चाहिए, क्योंकि सरसों का बीज छोटा होने के कारण अच्छी प्रकार तैयार की हुई भूमि में इसका जमाव अच्छा होता है। सरसों की खेती बारानी एवं सिंचित दोनों ही प्रकार से की जाती है। बारानी खेती के लिए खेत को खरीफ में खाली छोड़ना चाहिए पहली जुताई वर्षा ऋतु में मिट्टी पलटने वाले हल से करें। सिंचित खेती के लिए भूमि की तैयारी बुवाई के 3 से 4 सप्ताह पूर्व प्रारम्भ करें। प्रथम जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। इसके पश्चात 2–3 कल्टीवेटर से जुताई करके पाटा लगा देना चाहिए। बुआई के समय यदि खेत में ढेले रह जाते हैं तो इसके बीज का अंकुरण प्रभावित होता है। साथ ही चितकबरा (पेंटेड बग) कीट के प्रकोप का खतरा बढ़ जाता है क्योंकि ढ़ेलो में इस कीट को छिपने व अंडे देने की जगह आसानी से मिल जाती है। अतः पाटे का प्रयोग प्रत्येक जुताई के बाद अवश्य करना चाहिए ताकि खेत में नमी संरक्षित की जा सके तथा मिट्टी भुरभुरी बन जाये।

9. बीज की मात्रा, बुआई की विधि और उपचार

बीज की मात्रा :– 3.5 से 4 किलो बीज एक हेक्टेयर की बुआई के लिए पर्याप्त है। अगेती बुवाई के लिए बीज मात्रा 4.5 से 5 किलो प्रति हेक्टेयर रखनी चाहिए। बुवाई के लिए शुष्क क्षेत्रों में 4 से 5 किलो तथा सिंचित क्षेत्रों में 2.5–3 किलो बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त रहता है।

बुआई की विधि :– सामान्यतः सीडड्रिल द्वारा कतार बुआई जिसमें कतार से कतार की दूरी 30–45 सेन्टीमीटर तथा पौधे से

पौधे की दूरी 10–15 सेन्टीमीटर रखनी चाहिए। बीज की गहराई 2.5 से 3 सेन्टीमीटर रखनी चाहिए। बीजोत्पादन के लिए हमेशा कतार में सीडड्रिल से बुआई करना अच्छा रहता है ताकि रोगिंग में सुविधा हो तथा निराई–गुड़ाई भी आसानी से की जा सके। बुआई से पूर्व सीडड्रिल का समायोजन अवश्य कर लेना चाहिए ताकि उचित मात्रा में बीज का प्रयोग किया जा सके। सीडड्रिल की सफाई अच्छी प्रकार करनी चाहिए ताकि मिश्रण की संभावना न रहे। बीज की बुवाई खेत में उचित नमी की अवस्था पर ही करनी चाहिए तथा बुवाई करते समय ट्रैक्टर धीरे चलाना चाहिए ताकि सीडड्रिल से बीज न छिटकें तथा इस बात का भी ध्यान रहे कि सीडड्रिल की बीज गिराने वाली सभी नालियां खुली हों।

बीजोपचार :– बीजोपचार के लिए बीज को बुआई से पूर्व कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिन) 1–2 ग्राम अथवा थायरम 2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए। खेत में पूर्व में यदि सफेद रोली रोग आया हो तो एप्रेन 35 एस.डी. 6 ग्राम कवकनाशक दवाई प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करने से फसल पर लगने वाले रोग को काफी हद तक कम किया जा सकता है। मृदाजनित रोगों से बचाव हेतु 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करें।

10. खाद और उर्वरक

सिंचित फसल के लिए प्रति हेक्टेयर 8–10 टन अच्छा सड़ा हुआ देशी खाद बुवाई के कम से कम तीन सप्ताह पूर्व खेत में डाल दें व असिंचित क्षेत्रों में 4–5 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद डालकर जुताई करके खेत में मिला देवें। गोबर की खाद से प्रमुख तत्वों के साथ–साथ सूक्ष्म पोषक तत्व भी उपलब्ध होते हैं, भूमि की संरचना में सुधार होता है व नमी संरक्षित होती है। अतः भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने के लिए जैविक खादों का उपयोग आवश्यक होता है। जहाँ मिट्टी क्षारीय या क्षारीय लवणीय हो अथवा सिंचाई का पानी क्षारीय हो वहां 4–5 टन बारीक पिसा हुआ जिप्सम मई माह में खेत में हर तीसरे वर्ष डालकर अच्छी तरह मिला देवें। सिंचित फसल के लिये 60 किलो नत्रजन, 30 से 40 किलो फास्फोरस व 40 किलो सल्फर प्रति हेक्टेयर के हिसाब से देवें व असिंचित क्षेत्रों में संचित क्षेत्रों की आधी मात्रा (30 किलो नत्रजन एवं 15–20 किलो फास्फोरस एवं 20 किलो सल्फर) देवें। सिंचित क्षेत्रों में नत्रजन की आधी मात्रा व फास्फोरस व सल्फर की पूरी मात्रा बुवाई के समय उर कर देवें तथा शेष नत्रजन की मात्रा पहली सिंचाई के साथ देवें। असिंचित क्षेत्रों में नत्रजन, सल्फर व फास्फोरस की पूर्ण मात्रा को बुवाई के समय खेत में मिला देवें। उर्वरकों का संतुलित उपयोग करने के लिए नियमित मृदा परीक्षण करवाना आवश्यक है। बुवाई के समय नत्रजन अमोनियम सल्फेट से, फास्फोरस सुपरफास्फेट से, पोटाश अगर आवश्यक हो तो पोटेशियम सल्फेट से तथा सल्फर जिप्सम द्वारा देना चाहिए। सल्फर सरसों में तेल की मात्रा व गुणवत्ता को बढ़ाने के साथ–साथ पौधों में रोग प्रतिरोधकता भी बढ़ाता है। नत्रजन व फास्फोरस की पूर्ति अगर अमोनियम सल्फेट व सुपरफास्फेट से की जाये तो गन्धक इन दोनों से उपलब्ध हो जाता है। सूक्ष्म पोषक तत्व बोरोन की कमी वाली मृदाओं में 10 किलोग्राम बोरेक्स प्रति हेक्टेयर की दर से खेतों में बुवाई से पूर्व मिला दिया जाये तो अच्छा लाभ मिलता है। इसी प्रकार अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होने पर अच्छी उपज प्राप्त करने के लिये उन तत्वों का देना भी आवश्यक हो जाता है। जिंक की कमी से पौधे की बढ़वार धीमी पड़ जाती है। जिंक की कमी के लक्षण बुआई के 20 से 25 दिन बाद पत्तियों पर आते हैं पत्तियों का आकार छोटा रह जाता है और उनके किनारे गुलाबी हो जाते हैं तथा शिराओं के मध्य में ऊतकों का रंग पीला सफेद या कागजी सफेद हो जाता है जबकि शिरायें हरी ही रहती हैं। पत्तियाँ नीचे या ऊपर की तरफ प्याले की आकृति लेती हैं। जिंक की अधिक कमी से पत्तियाँ मर भी जाती हैं। प्रभावित पौधों पर फूल तथा फली देर से बनती हैं। जिंक की कमी वाली मृदा में जिंक को डालने पर करीब 25–30 प्रतिशत की पैदावार में वृद्धि होती है। इसके लिए भूमि में बुवाई से पहले 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर अकेले या जैविक खाद के साथ प्रयोग किया जा सकता है। खड़ी फसल में जिंक की कमी दिखाई दे तो इसका उपयोग 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट और 0.25 प्रतिशत बुझे हुए चूने (200 लीटर पानी में 1 किलोग्राम जिंक सल्फेट तथा आधा किलोग्राम बुझे हुए चूने) का घोल बनाकर फिर छानकर पौधे की 30 दिन की अवस्था से 15 दिन के अन्तराल पर 2 छिड़काव करें, जिससे बीज की गुणवत्ता व उपज में वृद्धि होती है। फूल आने के समय मल्टीप्लेक्स या एग्रेमिन 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करने से परागण पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। प्रति एकड़ एक पैकेट एजेटोबैक्टर का प्रयोग भी बहुत उपयोगी रहता है।

11. सरसों की फसल में शाखाओं की छंटाई एक लाभदायी प्रौद्योगिकी

सरसों एक न्यून ताप पर विकसित होने वाली फसल है। इसकी उत्पादक क्षमता मुख्य रूप से ताप तथा सौर विकिरण पर्यावरणीय कारक पर निर्भर करती है। सरसों की फसल में पौधे के निचले भाग की शाखाओं की छटाई करने के कई लाभ हैं जैसे कि सूर्य की

रोशनी फसल के अन्दर सभी पौधों को प्राप्त होती है, फसल में उचित तापमान बना रहता है, हवा का बहाव आसानी से होता है। साथ ही साथ फसल में उचित आर्द्रता बनी रहती है। पौधे का निचला भाग जो कम उत्पादक होता है की छटाई कर देने से फसल के विकास में उपयोग होने वाले पोषक तत्व पौधे के ऊपरी भाग जो कि अधिक उत्पादक होता है को प्राप्त होते हैं। इस विधि को अपनाने से बीमारियां जैसे सफेद रतुआ का प्रकोप कम हो जाता है। साथ ही साथ फसल की उत्पादन क्षमता 6–10 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। शाखाओं की छटाई बुआई के 50 दिन बाद करनी चाहिए तथा भूमि से 40 सेन्टीमीटर की ऊँचाई तक एक हाथ की ऊँचाई तक पौधे की सभी शाखाओं को तोड़कर अलग कर देना चाहिए। शाखाओं की छटाई मुख्यतः दो समयांतराल पर की जाती है, 40 दिन बाद छटाई या अगेती छटाई, 50 दिन बाद छटाई या पछेती छटाई। परन्तु अध्ययन में पाया गया है कि 50 दिन बाद पछेती छटाई शाखाओं की छटाई करने से उत्पादन सबसे अधिक, जबकि 40 दिन बाद शाखाओं की छटाई अगेती छटाई में कम तथा बिना छटाई किये हुए पौधे में उत्पादन सबसे कम होता है। सरसों के पौधे में 40 दिन बाद शाखाओं की छटाई अगेती छटाई तथा 50 दिन बाद शाखाओं की छटाई पछेती छटाई कर देने से उसमें ऊष्मा उपयोग करने की क्षमता, सौर विकिरण उपयोग करने की क्षमता तथा जल उपयोग करने की क्षमता बिना छटाई किये हुए पौधे की तुलना में बढ़ जाती है जिससे पौधे की वृद्धि एवं विकास सही तरीके से होता है और पौधे स्वस्थ एवं तना मजबूत पाया जाता है। सरसों की फसल में शाखाओं की छटाई कर देने से फसल में रोग जैसे सफेद रतुआ की समस्या कम हो जाती है। यह भी पाया गया कि जिन पौधे की छटाई कर दी गयी थी उसमें पाले का प्रकोप कम था जबकि जिनमें शाखाओं की छटाई नहीं की गयी थी उनमें पाले का प्रकोप अधिक था। सरसों के पौधे में पाला मुख्य रूप से जमीन के समीप वाले पत्तों में अधिक पाया जाता है। निचली शाखाओं एवं पत्तों की छटाई करके सरसों में होने वाले पाले के प्रकोप से भी पौधे को बचाया जा सकता है। सरसों की निचली शाखाओं एवं पत्तों की छटाई करके इनको पशुओं को खिलाने के काम में लिया जा सकता है। निचली शाखाओं एवं पत्तों की छटाई से मिला हारा चारा पशुओं के लिए सल्फर युक्त प्रोटीन व अन्य खनिज तत्वों का उत्तम स्रोत होता है।

12. सिंचाई

पहली सिंचाई खेत की नमी, फसल की जाति और मृदा प्रकार को देखते हुए 30 से 40 दिन के बीच फूल बनने की अवस्था पर ही करनी चाहिए। दूसरी सिंचाई फली बनने पर करनी चाहिए। यह अवस्था 70–80 दिनों में आती है। अति आवश्यकता पड़ने पर तृतीय सिंचाई बुवाई के 105–110 दिन बाद करनी चाहिए। बलुई दोमट मिटटी में 12 मीटर की दूरी पर नोजल लगाकर फव्वारा सेट 7 घंटे चलाकर दो सिंचाई करने पर सतही विधि के बराबर उपज के साथ 35–40 प्रतिशत पानी की बचत की जा सकती है। अगेती सरसों में सामान्यतः दो सिंचाई पर्याप्त रहती हैं। प्रथम सिंचाई बुआई के 30 से 35 दिन बाद तथा दूसरी सिंचाई फलियों में बीज बनने की अवस्था पर सूखे की स्थिति में करनी चाहिए। आवश्यकता से अधिक सिंचाई करने से फसल के गिरने का डर रहता है तथा फूल लम्बे समय तक आते रहते हैं जिसके कारण फलियाँ एक साथ न पकने के कारण बीज की गुणवत्ता प्रभावित होती है एवं फसल में फफूंदी जनक रोग बढ़ने की सम्भावना भी अधिक हो जाती है। सिंचाई करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि खेत में पानी भरा न रहे। असिंचित क्षेत्रों में साधारणतया कोई सिंचाई नही की जाती है परंतु आवश्यकता पड़ने पर एक सिंचाई फूल आने की अवस्था पर करें।

13. खरपतवार प्रबंधन

सरसों की खेती में, समय पर और प्रभावी तरीके से खरपतवार नियंत्रण एक प्रमुख कृषि क्रिया है जो फसल विकास और उपज पर तत्काल सकारात्मक प्रभाव ला सकती है। फसलों में कीड़े, बीमारियों और खरपतवार की वजह से कुल उपज मे होने वाली हानियों में, एक तिहाई हिस्सा केवल मात्र खरपतवार का होता है। खरपतवार के कारण फसल उपज मे होने वाली हानि की समस्या उन क्षेत्रों में और अधिक गंभीर हो जाती है, जहां फसल की पैदावार प्राथमिक रूप से पानी की सीमितता से निर्धारित होती है। शोध निष्कर्षों मे यह पाया गया है कि कम नमी वाले खेत मे खरपतवार केवल पानी के लिए फसल से प्रतिस्पर्धा के जरिए 50 प्रतिशत से अधिक फसल की पैदावार में कटौती कर सकते हैं। खरपतवार फसल के साथ पोषक तत्व, नमी, स्थान एवं प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करके सरसों की पैदावार एवं तेल प्रतिशत में कमी कर देते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार सरसों की पैदावार में खरपतवारों की संख्या एवं प्रजाति के अनुसार 20–70 प्रतिशत तक कमी आंकी गई है। खरपतवार भूमि से 11–48 किलोग्राम नत्रजन, 2–14 किलोग्राम फास्फोरस तथा 15–82 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टर शोषण करके फसल को पोषक तत्वों से वंचित

कर देते हैं। इसके अतिरिक्त सत्यानाशी नामक खरपतवार का बीज राई–सरसों के बीज के साथ मिलकर तेल की गुणवत्ता में कमी कर देता है तथा जिसके खाने में प्रयोग से 'ड्रॉप्सी' नामक जानलेवा बीमारी का प्रकोप विगत वर्षों में देखा गया है। भारत में सरसों की खेती शरद (रबी) ऋतु मे उत्तर–पूर्वी/उत्तर–पश्चिमी पहाड़ियों से लेकर दक्षिणमें डेक्कन पठार तक विभिन्न कृषि–जलवायु परिस्थितियों में बारानी और सिंचित भूमियों पर एकल फसल या मिश्रित फसल प्रणाली के रूप में की जाती है। जहाँ भौगोलिक परिस्थितियों, जलवायु एवं भूमि के प्रकार, फसल चक्रो में परिवर्तन के कारण खरपतवारों की संख्या एवं प्रजाति में भी बदलाव आ जाता है। इन परिस्थितियों मे सरसों मे पाये जाने वाले प्रमुख खरपतवार सारणी के अनुसार है।

सारणी 13.1 सरसों में उगने वाले प्रमुख खरपतवार

खरपतवार का प्रकार	वनस्पतिक नाम	हिन्दी नाम
चौड़ी पत्ती वाले	*चेनोपोडियम एल्बम*	बथुआ
	चिनोपोडियम मुरेल	खरबथुआ
	लेथाइरस अफाका	जंगली मटर
	मेडिकागो हिस्पिडा	मरवारी
	चिकोरियम इन्टाइब्स	चिकोरी (कासनी)
	एस्फोडिलस टेन्यूफोलियस	प्याजी
	कोन्वोलुल्स अर्वेन्सिस	हिरनखुरी
	विसिया सेटाइवा	अकरी
	मेलीलोटस इंडिका	सैंजी
	एनेगेलिस अर्वेन्सिस	कृष्णनील
	सिरसियम अर्वेन्स	कटेली
	सोलेनम नाइग्रम	मकोई
	आरजेमोन मेक्सिकाना	सत्यानाशी
	कोरोनोपस डिडीमस	पीतपापडा
	रूमेक्ष डेन्टेटस	जंगली पालक
	फुमेरिया पार्वीफ्लोरा	गजरा
सकरीं पत्ती वाले	*फेलेरिस माइनर*	गुल्ली डंडा/गेहूं का माँमा/गेहूंसा
	साइनोडोन डैक्टाइलोन	दूब घास
	एविना ल्यूडोसिसियाना	जंगली जई
	पौआ एनुआ	फूलनी घास
मोथाकुल	*साइपेरस रोटन्डस*	मोथा

खरपतवार नियंत्रण का उपयुक्त समय

खरपतवार नियंत्रण कार्यक्रम में समय का सर्वाधिक महत्व है। यदि खरपतवारों की रोकथाम, खरपतवार प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवस्था में न की गई तो उससे भरपूर लाभ नहीं मिल पाता है। राई–सरसों में यह अवस्था बुआई के बाद 10 दिन से 40 दिन तक रहती है। इसीलिये यह आवश्यक है कि यदि हम शाकनाशी रसायनों का उपयोग कर रहे हैं तो उनका असर भूमि में कम से कम बुआई के बाद 40 दिन तक रहना चाहिये।

खरपतवार नियंत्रण के उपाई (विधियाँ)

खरपतवार नियंत्रण की विधियों का चुनाव करते समये किसान भाई इस बात का ध्यान रखें की जो भी विधि अपना रहा है वह विधि फसल को प्रारंभिक अवस्था में बुआई के 10 से 40 दिन के बीच के समय मे फसल को खरपतवारों से मुक्त रखे क्योंकि बुआई के 10 से 40 दिन के बीच का समय सरसों मे फसल–खरपतवार प्रतियोगिता की दृष्टि से क्रांतिक समय होता है, अगर इस समय अवधि मे फसल मे खरपतवार होंगे तो वो फसल की खुराक खा जाते हैं और फसल की बढ़ोतरी पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। कुछ खेती की क्रियाओं में सावधानी बरतने से खरपतवारों पर आसानी से काबू पाया जा सकता है साथ ही साथ फसल की गुणवत्ता में भी बढ़ोत्तरी की जा सकती है। जैसे प्रमाणित बीजों का प्रयोग, अच्छी सड़ी गोबर या कम्पोस्ट की खाद का प्रयोग, सिंचाई की नालियों की सफाई, खेत की तैयारी और बुआई के प्रयोग किये जाने वाले यंत्रों का प्रयोग से पूर्व अच्छी तरह से सफाई आदि क्रियाएं शामिल हैं जिसके द्वारा खरपतवारों के प्रवेश को रोका जा सकता है। खेत मे खरपतवारों के बीज प्रवेश को रोकने के साथ–साथ खुरपी या हैरो से दो बार निराई गुढ़ाई, पहली बुआई के 20 दिन बाद तथा दूसरी 40 दिन बाद करने से खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। इसके बाद उगने वाले खरपतवार फसल के नीचे दबकर रह जाते हैं तथा फसल से प्रतियोगिता नहीं कर पाते। पहली निराई गुढ़ाई के समय सरसों के अनावश्यक पौधों को निकालकर पौधे से पौधे की दूरी 10 सेमी कर देनी चाहिए ताकि पौधों की बढ़वार अच्छी तरह हो सके। अगर खेत मे खरपतवारों का प्रकोप ज्यादा होता है तो शाकनाशी रसायनों के प्रयोग द्वारा खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। शाकनाशी रसायनों के प्रयोग मे एक तरफ कम समय मे खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण हो जाता है वहीं दूसरी और लागत कम आती है तथा समय की बचत होती है। शाकनाशी रासायनों के प्रयोग (सारणी 13.2) में ध्यान देने योग्य बात यह होती है कि उनका प्रयोग सही समय पर, उचित मात्रा में तथा ठीक ढंग से होना चाहिये, अन्यथा लाभ की बजाय नुकसान उठाना पड़ सकता है। पेन्डीमेथीलीन के छिड़काव के बाद 15–20 दिन तक किसी प्रकार की कृषि क्रियायें नहीं करनी चाहिए अन्यथा भूमि की ऊपरी परत टूटने से खरपतवार नाशक का प्रभाव कम हो जाता है।

सारणी 13.2 सरसों में प्रयोग किए जाने वाले प्रमुख शाकनाशी रसायन एवं प्रयोग की विधि

शाकनाशी रसायन का नाम	मात्रा (ग्राम सक्रिय तत्व/है.)	उपयोग का समय	विधि
ऑक्साडायजान (रोन्स्टार)	750	बोने के बाद परन्तु उगने के पूर्व	खरपतवार नाशी की आवश्यक मात्रा को 600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टर की दर से समान रूप से छिड़काव करना चाहिये
आइसोप्रोटयूरान (एरीलिन)	1000	बेने के बाद परन्तु उगने के पूर्व	
पेन्डीमेथालिन (स्टाम्प)	1000	बोने के बाद परन्तु उगने के पूर्व	
फलूक्लोरालिन (बासालिन)	1000	बुआई के पूर्व खेत में अच्छी तरह मिला दे	
क्यूजेलोफाप (टरगासुपर)	60	बुआई के 20–25 दिन बाद	

ओरोबैंकी

ओरोबैंकी, भूँईफोड़ या आग्या (ब्रुमरेप) मुख्यतः सरसों कुल की फसलों का पूर्ण जड़–परजीवी खरपतवार है, जो अपनी उत्तरजीविता के लिए सम्पूर्ण जीवन–चक्र के दौरान पूर्णरूप से दूसरे स्वपोषित पौधे पर निर्भर रहते हैं। ओरोबैंकी, अपर्ण–हरिती, पुष्पीय पूर्ण रूप से मूल परजीवी खरपतवार होता हैं। यह सुपर सिंक अर्थात फसल द्वारा संश्लेषित को चूस कर फसल के उत्पादन को अपेक्षित रूप से कम कर देता है। ओरोबैंकी आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण द्विबीजपत्रीय फसलों की जड़ों पर आक्रमण करते हैं। ओरोबैंकेसी कुल की प्रजातियों मे *ओरोबैंकी क्रेनाटा, ओरोबैंकी सर्नुआ, ओरोबैंकी रेमोसा* व *ओरोबैंकी इजिप्टियाका* ही आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। *ओरोबैंकी इजिप्टियाका* सरसों (क्रुसीफेरी) कुल की फसलों के अतिरिक्त कई सोलोनेसी कुल की फसलें जैसे टमाटर, बैंगन, तम्बाकू, आलू का भी परजीवी खरपतवार है। सरसों की फसल में इसके प्रकोप से 10 से 70 प्रतिशत तक हानि हो सकती है। *ओरोबैंकी इजिप्टियाका* का आक्रमण सरसों, तोरिया, राया आदि फसलों पर सबसे पहले राजस्थान के अलवर, भरतपुर, सवाईमाधेपुर आदि क्षेत्रों में देखा गया था। यह परजीवी सरसों उगाये जाने वाले सभी क्षेत्रों जैसे राजस्थान,

उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, पंजाब, हरियाणा आदि में पाया जाता हैं। खेतों में ओरोबैंकी की उपस्थिति किसानों को कम फायदेमंद, अपरपोषी फसल उगाने या खेत को खाली छोड़ने के लिए बाध्य कर सकती है। यह परपोषी पौधे के साथ पोषक तत्वों एवं जल की आपूर्ति मे तीव्र प्रतिस्पर्धा कर पौधे को कमजोर बना देता है जिससे पौधे की वृद्धि रुक जाती है। ओरोबैंकी से ग्रस्त सरसों के पौधे छोटे रह जाते हैं और कभी–कभी मर भी जाते हैं। फलस्वरूप पौधे से प्राप्त उपज में अप्रत्याशित कमी होती है।

चित्र (क)–ओरोबैंकी से संक्रमित सरसों का खेत। चित्र (ख)–ओरोबैंकी के चुषकांग द्वारा सरसों की जड़ों पर संक्रमण

जीवन–चक्र

ओरोबैंकी इजिप्टियाका एक सीध, पीला–भूरा, पुष्पदंडधर पूर्ण रूप से जड़–परजीवी है जिसके शल्क मसूराकार एवं पुष्प नीले होते हैं। पौधा क्लारोफिल रहित होता है। ओरोबैंकी द्विबीजपत्रीय एकवर्षीय पौधा हैं जो केवल बीजों द्वारा प्रजनन करते हैं। बीज सामान्यतः गहरे भूरे, अण्डाकार, होते हैं और इनका वजन 3 से 6 माइक्रोग्राम होता है। बीजों की संख्या प्रति पौधा 10000 से 50000 तक होती है जो कि प्रजाति पर निर्भर करती है। पकने के बाद कुछ बीज तो बीजकोष में रह जाते हैं लेकिन ज्यादातर भूमि पर गिर जाते हैं। सामान्यतः बीज भूमि में 10 वर्षों या अधिक समय तक जीवनक्षम बने रहते हैं। मृदा तापमान, नमी, पोषक तत्व, मृदा गठन, पी.एच. औरपरपोषी पौधे द्वारा प्रदत उत्तेजक अकुंरण के लिए महत्वपूर्ण है। इसके बीज का अंकुरण परपोषी की जड़ों से मिलने वाले रासायनिक संकेतों की प्रतिक्रिया में होता है। अनुकूल अवस्था में फसल की बिजाई के 7–10 दिन बाद इस खरपतवार के बीज परपोषी पौधे द्वारा प्रदत्त रासायनिक उत्तेजक जैसे एलिक्टरोल, ओरोबैंकोल और अन्य कोटिलनीयस व जेसमोनेट की उपस्थिति में एक मूलाकुंर उत्पन्न करता है जो रसायन–अनुवर्ती परपोषी पौधें की जड़ों की तरफ बढ़ता है। रासायनिक उत्तेजकों की स्थिरता मृदा में बहुत ही कम अवधि की होती है। जैसे ही मूलाकुंर की नोक परपोषी की जड़ से जुड़ती है, यह बढ़ती जाती है और एक चूषकांग बना लेती है। एक सफल संलगन के लिए जरूरी है कि परजीवी के बीज परपोषी पौधे की जड़ों के 3 सेमी के दायरे में हो। चूषकांग बनने के बाद शिखर पर कोशिकाएँ विकसित होती है और वल्कीय व अन्तःस्तर कोशिकाओं को तोड़ते हुए संवहन पूल में घुसकर संवहन–प्रणाली के साथ सम्बंध बनाने के बाद नव–पादप जो हल्के रंग के लगभग पारदर्शी धागे जैसे होता हैं, का परपोषी की जड़ से बाहर का हिस्सा फूलकर एक गुलिका बनाता है। उपयुक्त परपोषी के अभाव में नव–पादप मुरझाकर मर जाते हैं। परपोषी की संवहन–प्रणाली के साथ संबंध बनाने के बाद परजीवी अपने पोषक–तत्व एवं जल परजीवी से प्राप्त करते हैं। वृद्धि के एक या दो सप्ताह या इससे भी ज्यादा (4–6 सप्ताह) समय बाद गुलिका पर एक कोपल–कली का विकास होता है जिससे एक पुष्पीय स्पाईक बनती है जो लम्बी होती जाती है और मृदा की सतह से बाहर आती है। ओरोबैंकी अपनी ज्यादातर वानस्पतिक अवस्था भूमि के नीचे ही पूर्ण करता है तथा अपने परपोषी के पुष्पक्रम बनने की

शुरूआत के तुरन्त बाद केवल फूल निकलने के लिए ही बाहर आता है। अकुंरण से उद्गमन होने में 30–45 या फिर 90–120 दिन का समय लगता हैं। उद्गमन होने के 6 से 9 दिन बाद पुष्पन शुरू हो जाता है और बीजोत्पादन अगले 7 दिन के अन्दर हो जाता है।

लक्षण

ओरोबैंकी से ग्रस्त सरसों के पौधे छोटे रह जाते है। सरसों के पौधों की नीचे मिट्टी से निकलते हुए ओरोबैंकी परजीवी दिखाई पड़ते हैं। सावधानी से उखाड़ कर देखें तो पता चलता है कि ओरोबैंकी के चूषकांग (हास्टोरिया) या जड़े, सरसों की जड़ों के अन्दर घुसी हुई दिखती है। ओरोबैंकी के चूषकांग सरसों की जड़ों में घुस कर पोषक तत्व प्राप्त करते हैं। इसके प्रकोप से सरसों की फसल में पैदावार में क्षति व बुवाई क्षेत्र में कमी के साथ ही फसल की गुणवत्ता में भी कमी आती है।

ओरोबैंकी का प्रबन्धन

भरपूर बीजोत्पादन, बीज की लम्बे समय तक मृदा में जीवनक्षम बने रहने की क्षमता, केवल उपयुक्त परपोषी से प्रदत रासायनिक उत्तेजक की उपस्थिति में बीज अंकुरण, उद्गमन के बाद प्रबल, ओजस्वी व शीघ्र वृद्धि आदि गुणों और परपोषी फसल के साथ नजदीकी साहचर्य के कारण परजीवी का प्रबन्धन मुश्किल है। ओरोबैंकी की उपस्थिति के कारण जब सरसों की फसल का उत्पादन अधिक समय के लिए लाभदायक नहीं रहता तो किसान सरसों की खेती छोड़ने पर मजबूर हो जाते हैं। किन्तु प्रबन्धन के निम्नलिखित विकल्पों को एक एकीकृत सोच के साथ लागू करके किसान ओरोबैंकी ग्रसित खेत में सरसों की खेती कर सकता है:

निरोधात्मक उपाय

- उन्नत किस्मों के स्वस्थ व प्रमाणित बीज जिनमें ओरोबैंकी के बीजों का संक्रमण न हो, का प्रयोग करें। परजीवी ग्रसित खेतों से प्राप्त सरसों के बीज के प्रयोग से बचें। अगर स्वच्छ व परजीवी रहित बीज उपलब्ध न हो तो ओरोबैंकी के बीज को सरसा/राया के स्वस्थ बीज से बिजाई पूर्व यान्त्रिक विधि से या नीले थोथा/कॉपर सल्फेट के 0.25 प्रतिशत घोल में उपचारित करके अलग करें।
- नये क्षेत्रों में परजीवी बीज के प्रवेश को रोकने हेतु परजीवी के बीज रहित सरसों के शुद्ध बीज का उपयोग करना चाहिए।
- अच्छी तरह किण्वित व अपघटित खादों का प्रयोग करें।
- दूषित भूसा या फसल के अवशेष पशुओं को ना खिलाऐं।
- ग्रसित खेतों में प्रयोग करने के बाद कर्षण व कटाई के कार्य मे आये उपकरणों की सफाई करें व अन्य खेत मे उपकरणों का प्रवेश सफाई के बाद ही करावे और उचित पादप–स्वच्छता उपायों का पालन करें।

यान्त्रिक एवं भौतिक विधियाँ

- गर्मी के महीनों में और फसल की बुवाई के समय खेत की तैयारी हेतु गहरी जुताई (20 सेन्टीमीटर से अधिक) करें।
- पुष्पन से पहले परजीवी पौधे को हाथ से हटाकर इन्हें इधर–उधर फेंकने की बजाय एक स्थान पर इकठ्ठा करके जला दें। ओरोबैंकी ग्रसित फसल के अवशेषों को जलाने से खरपतवार के बीजों की पुनः मृदा में जाने की सम्भावना घट जाती है।
- परजीवी को सावधानी से जमीन से ऊपर के तने को काटकर बीज बनने से पहले ही नष्ट कर देना चाहिए।
- यदि बीज बन गये हों तो पौधे को सावधानी से कुदाली से निकालना चाहिये।
- **मृदा आतपन** :– नमी युक्त मृदा को (बिजाई के दौरान न्यूनतम या बिना विघ्न के) सफेद या काली प्लास्टिक की चादर द्वारा ढ़कने से बिना ढ़की हुई मिट्टी की तुलना में तापमान की वृद्धि हो सकती है। इससे ओरोबैंकी के प्रकोप में कमी हो सकती है। परम्परागत जुताई की अपेक्षा बिना जुताई वाली स्थिति में आतपन के प्रयोग से ओरोबैंकी का बेहत नियन्त्रण पाया गया है।

सस्य क्रियाएं

- **पाश और अन्तर्वती फसलें** :– पाश फसलें जैसे अलसी, सेम आदि बिना आत्म क्षति के ओरोबैंकी बीजों का अंकुरण करती है। अन्तर्वती फसलें जैसे बरसीम और लाल मिर्च भी ओरोबैंकी प्रकोप के प्रति अति सवेंदनशील है।
- अधिक प्रकोप वाले क्षेत्रों में सरसों की फसल ट्रेप क्रोप के रूप में बोनी चाहिये। 30–40 दिन में परजीवी के पौधे बाहर निकलते

दिखाई देवें तो नवम्बर के अन्त में गहरी जुताई करके सरसों सहित इसके भूमिगत तने को नष्ट कर देना चाहिये। इसके बाद अन्य फसल की बुवाई करनी चाहिए।

- **फसल–चक्रः**– संवेदनशील फसलों की उसी खेत मे बारम्बार बिजाई को कम किया जाना चाहिए। जौं, गेहूं, अरण्डी और चना, फसल–चक्र बहुत ही प्रभावी हैं। जहाँ तक हो सके सरसों की फसल विकल्प वर्षों में लेनी चाहिए और किस्म भी बदलनी चाहिए ताकि परजीवी को विविध किस्में मिल सकें। इस प्रकार फसल चक्र अपनाने से इस परजीवी को प्राकृतिक रूप से नियंत्रित किया जा सकता हैं या लम्बे समय तक फसल चक्र अपनाकर इसकी उग्रता को रोका जा सकता है।
- **बिजाई का समय एवं फसल घनत्व** :– निश्चित परिस्थितियों में देरी से बिजाई द्वारा बीज अंकुरण के अनुकूल तापमान में परिवर्तन करके खरपतवार की परजीविता को कम किया जा सकता है। भारत में जल्दी बिजाई इस खरपतवार के अंकुरण को कम करने में सहायक हो सकती है, जिसका कारण तापमान का अनुकूलतम से अधिक होना है। बीज की मात्रा में की गई वृद्धि से फसल–खरपतवार स्पर्धा के द्वारा भी इसके प्रकोप को कम कर सकते हैं।
- सरसों की किस्म, आर.आर.एन. 593 (दुर्गामणी) ओरोबैंकी के प्रति प्रतिरोधक पाई गई है। सरसों की किस्म दुर्गामणि की बुवाई करें।
- परजीवी पौधे कम उर्वरता वाली भूमि पर अधिक उगते हैं। सामान्यतः नत्रजन की नाइट्रेट अवस्था की तुलना में अमोनिकल अवस्था ओरोबैंकी के प्रति ज्यादा निरोधक है। अमोनियम नाइट्रेट से भी अंकुरण व मूलाकुंर की लम्बाई में कमी होती है।

रासायनिक विधियाँ

- मृदा प्रधूमक जैसे मिथाइल ब्रोमाइड, ओरोबैंकी नियन्त्रण हेतु सबसे अधिक प्रभावी है।
- स्ट्राइगोल सादृश्य रसायन–जी. आर. 24, का 0.1–1.0 पी.पी.एम. की दर से प्रयोग ओरोबैंकी के बीज अंकुरण को परपोषी पौधों की अनुपस्थिति में प्रेरित करते हैं जिससे यह खरपतवार ''आत्मघात अंकुरण'' का शिकार हो जाते हैं।
- ओरोबैंकी से प्रभावित सरसों के खेत में भूमि की सतह के पास 25 प्रतिशत नीलेथोथे/कॉपर सल्फेट के घोल का छिड़काव करके नव–अंकुरित परजीवी को नष्ट किया जा सकता है।
- ओरोबैंकी पौधे पर सोयाबीन के तेल की 2 बूंदे प्रति कोपल डाल देने से मर जाता है।
- ओरोबैंकी पर 0.4 प्रतिशत ग्लाईफोसेट का सीधा छिड़काव करके इसे नष्ट किया जा सकता है। ग्लाइफोसेट (60 ग्रा./है.) नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश उर्वरकों (1:1:2) के एक साथ प्रयोग से नियन्त्रण क्षमता में वृद्धि और फसल मे ग्लाइफोसेट से होने वाली पादप विषाक्तता में कमी होती है।
- तोरिया के पौधे में पाया जाने वाला एक संसोधित इनोल फास्फेट–शिकिमेट फास्फेट सिन्थेज (इ.एस.पी.एस.), जोकि ग्लाइफोसेट प्रतिरोधी है, के कारण ग्लाइफोसेट डालने से ओरोबैंकी का उत्तम नियन्त्रण किया जा सकता है।

14. फसल सुरक्षा

कीट व बीमारियों का प्रबंधन

सरसों की उपज को बढ़ाने तथा उसे टिकाऊ बनाने के मार्ग में एक प्रमुख समस्या कीटों और रोगों का प्रकोप है, जो कुछ हद तक इन फसलों के अस्थिर उत्पादन के लिए उत्तरदायी है। इस फसल को कीटों एवं रोगों से काफी नुकसान पहुँचता है जिससे इसकी उपज में बहुत कमी हो जाती है। यदि इसके कीटों एवं रोगों को समय पर पहचान कर उनका नियंत्रण कर लिया जाये तो सरसों के उत्पादन में बढ़ोत्तरी हो सकती है। सरसों फसल में चितकबरा कीट, चेंपा या माहू एवं आरा मक्खी प्रमुख कीट तथा सफेद रोली, तना गलन, झुलसा (अल्टरनेरिया) प्रमुख रोग है। इनका समय पर नियंत्रण करना आवश्यक है, क्योंकि इनका समय पर नियंत्रण नही करने से फसल कमजोर हो जाती है तथा उपज में 15–20 प्रतिशत तक नुकसान होता है।

14.1 कीट

1. बगराडा, घोलिया,झारा,चितकबरा कीट (पेंटेड बग)

पेंटेड बग सरसों का प्रमुख कीट है। यह चितकबरे रंग का छोटा सा कीट है जो दिन में भूमि की दरारों में छिपे रहते हैं तथा रात

को बाहर निकलकर पौधों पर आक्रमण करते हैं। यह कीट सरसों की फसल को दो बार नकुसान पहुँचाता है। पहली बार फसल उगने के तुरन्त बाद सितम्बर से अक्टूबर तक, जब तक की तापमान 30 डिग्री सेन्टीग्रेट या इससे कम न हो जाए तथा दूसरी बार फली बनने की अवस्था के समय फरवरी–मार्च में। फसल के उगने के तुरन्त बाद के समय पर यह कीट नवजात पौधों के तने को जड़ के ऊपर से काट देता है प्रकोप ज्यादा होने पर कभी–कभी पूरे खेत को खाली कर देता है। पौधे की 4–5 पत्तियों की अवस्था तक कीट का प्रकोप अधिक रहता है। इस अवस्था में वयस्क कीट एवं उसके निम्फ पौधे के तने व पत्तियों से रस चूसते हैं, जिससे पहले पत्ते सफेद से हो जाते हैं तथा बाद में मुरझाकर सूख जाते हैं। फली बनने एवं फसल के पकाव की अवस्था पर भी यह कीट नुकसान करता है, जिससे फलियां एवं दाने सिकुड़ जाते हैं। इस कीट के निम्फ एवं वयस्क मल उत्सर्जित करते है जो फलियों को खराब कर देते हैं। आजकल यह कीट कटाई उपरांत खेत में पड़ी ढेरियों पर भी नुकसान पहुंचाता है। इस कीट का आक्रमण अगेती सरसों की फसल में अधिक पाया जाता है।

नियंत्रण

- प्रकोप की प्रारम्भिक अवस्था में कीड़ों को हाथ से एकत्र करके नष्ट कर दें।
- अण्डों को नष्ट करने के लिए फसल काटने के बाद गहरी जुताई करें।
- छोटे पौधों में सिंचाई करने से पौधे इस कीट के प्रकोप को सहन कर पाने में काफी हद तक सक्षम हो जाते हैं।
- फसल की सिंचाई करते समय 5 किलो ग्राम क्रूड आयल इमलसन / हेक्टेयर मिलाने पर दरारों तथा छेदों में बग नष्ट हो जाता है।
- पकी हुई फसल को कटाई के बाद अधिक दिनों तक खेत में न पड़ा रहने दें तथा जल्दी से थ्रेसिंग कर लें।
- सरसों के बीज को इमीडाक्लोप्रिड 70 डब्ल्यू.एस. 5 ग्राम/किलोग्राम बीज या इमीडाक्लोप्रिड 17.5 एस.एल. 5 मि.ली. /किलोग्राम बीज की दर से उपचारित कर बुवाई करें।
- अंकुरण के तुरन्त बाद खेत में फोलीडोल डस्ट या मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत 25 किग्रा/प्रति हैक्टेयर की दर से हैण्ड डस्टर की सहायता से अच्छी तरह बुरकाव करना चाहिए।
- क्यूनालफास चूर्ण 1.5 प्रतिशत 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर के हिसाब से भुरकाव करे या मेलाथियान 50 ई.सी. 1 मि.ली. /लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- यदि इस कीट का प्रकोप फसल पकते समय (फरवरी–अप्रैल) में भी हो, तो 1000 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. अथवा डेल्टामेथ्रिन 2 मि.ली./लीटर 500–800 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।
- जैविक नियंत्रण एजेंट एलोपफोरा स्पीसीज को संरक्षित करना चाहिए जो कि पेंटेड बग पर परजीवी है।

2. चेंपा,तेला,माहू (एफिड)

चेंपा सरसों का एक प्रमुख कीट है। चेंपा एक छोटा, कोमल शरीर तथा नाशपती के आकार का नाजुक कीट है। इसमें मादा दो प्रकार की होती हैं। पंख युक्त तथा पंख रहित। पंख युक्त वयस्क मादा चेंपा भद्दे हरे रंग की होती है तथा पंखरहित मादा वयस्क हल्का पीले, हरे एवं जैतुनी हरे रंग की तथा शरीर पर सफेद रंग की मोम युक्त परत चढ़ी होती है। नर वयस्क जैतुनी हरा एवं भूरे रंग का होता है। यह कीट मैदानी क्षेत्रों में नवम्बर से मार्च तक सक्रिय रहता है। चेंपा के लिए अनुकूल वातावरण दशा में मुख्यतः तापमान 8–24 डिग्री सेल्सियस एवं सापेक्षिक आर्द्रता 70–80 प्रतिशत होती है। इस कीट की बढ़वार के लिए बादलों वाला मौसम बहुत अनुकूल होता है। जब आसमान में बादल रहते हैं तब इसकी संख्या में तेजी से बढ़ोतरी होती है। इस दशा में चेंपा की आक्रामकता फसल पर सर्वाधिक होती है। चेंपा की दो अवस्थाएं होती हैं– निम्फ और वयस्क। ये दोनों ही अवस्थाओं में पौधों के तने, पत्तियों, फूलो तथा फलियों से रस चूसकर फसल को भारी नुकसान पहुंचाता है। इस कीट के तीव्र प्रकोप होने पर पौधे की बढ़वार रुक जाती है, अविकसित होकर सूख जाता है, फूल नहीं बनते है। यदि बन भी गए तो फलियां नहीं बनती या अविकसित फलियां बनती है। यह कीट एक प्रकार का मधुरस स्रावित करते हैं, जिसके कारण कवक संक्रमण हो जाता है। चेंपा के भारी संक्रमण के प्रभाव से खेत झुलसा रोग से ग्रसित जैसा दिखाई देने लगता है। चेंपा की आर्थिक दहलीज सीमा (ई.टी.एल.) 30 – 40 चेंपा कीट/10 सेन्टीमीटर मुख्य तने का ऊपरी भाग है।

नियंत्रण

- सरसों की अगेती बुवाई (15 से 25 अक्टूबर तक) करने से चेंपा कीट का फसल पर आक्रमण बहुत कम होता है।
- चेंपा कीट के प्रकोप से प्रभावित टहनियों को प्रारम्भिक अवस्था में ही तोड़कर नष्ट कर दें।
- सरसों की फसल में नत्रजन युक्त उर्वरकों की मात्रा सिफारिश के अनुसार ही दें, क्योंकि इनके अधिक प्रयोग से कीड़ों का आक्रमण ज्यादा होता है। दूसरी तरफ, पोटाशयुक्त उर्वरकों के देने से कीटों के प्रजनन व उत्सर्जन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः उर्वरकों का प्रयोग संतुलित व सिफारिश के अनुसार ही करना चाहिए।
- जब कीट का प्रकोप औसतन 10 प्रतिशत पौधों पर या औसतन 25 कीट प्रति पौधा हो जाए, तो इनमें से किसी एक कीटनाशक का प्रयोग करें। मोनोक्रोटोफास 35 डब्लू.एस.सी. या डाइमेथोएट 30 ई.सी. या मिथाइलडिमेटान 25 ई.सी. या क्युनलफास 25 ई.सी. या थायामिडान 25 ई.सी. 1000 मि.ली. या फास्फोमिडान 85 डब्लू.एस.सी. 250 मि.ली. प्रति हेक्टेयर या मैलाथियान 50 ई.सी. 1250 मिली. प्रति हेक्टेयर की दर से 500–800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से इस कीट के नुकसान से फसल को बचाया जा सकता है।
- इसके नियंत्रण हेतु नीम सीड करनल एक्सट्रैक्ट (एन.एस.के.इ.) का 5 प्रतिशत घोल का छिड़काव प्रभावी है।
- परजीवी मित्र कीट *डायरेटिला रेपी* इस कीट को परजीवी युक्त कर मार देता है। इसके अतिरिक्त परभक्षी कीट जैसे *काक्सीनेला सेप्टेम्पंकटाटा, क्राइसोपा, सिरफिड* आदि चेंपा कीट के शिशु एवं प्रोढ़ों को खाकर इस कीट की संख्या को बढ़ने से रोकते हैं। चेंपा के इन प्राकृतिक शत्रु कीटों की कीटनाशकों से रक्षा करें। यदि इन कीटों की संख्या ज्यादा हो तो कीटनाशकों का प्रयोग न करें।
- किसान को सलाह दी जाती है जब चेंपा का संक्रमण 10 सेंटीमीटर मुख्य टहनी पर 50 चेंपा से ज्यादा या मुख्य टहनी के 0.5–1.0 सेंटीमीटर से अधिक पर चेंपा की कॉलोनी के द्वारा 40 प्रतिशत से अधिक पौधों का संक्रमण हो तब आक्सीडेमेटोन मिथाइल 25 ई.सी, डाइमेथोएट (रोगर) 30 ई.सी. का 1 मिली / लीटर के छिडकाव करना चाहिए।

3. आरामक्खी

सरसों की फसल में उगते ही आरामक्खी का प्रकोप शुरू हो जाता है। अतः फसल की प्रारम्भिक अवस्था में आक्रमण से भारी नुकसान होता है। इस कीट के लार्वा नई पत्तियों को खा जाते हैं व पत्तियों मे छेद कर देते हैं। कभी–कभी कीट का प्रकोप इतना अधिक होता है कि पौधों को पत्ती विहीन कर देते हैं, जिससे फलियाँ बनने की प्रक्रिया बाधित हो जाती है।

नियंत्रण

- इसके नियंत्रण हेतु गर्मी के दिनों में खेत की गहरी जुताई करें।
- सरसों की बुवाई 25 अक्टूम्बर से पहले करें।
- इस कीट सूंडियों के पकड़ कर नष्ट कर दें।
- फसल की सिंचाई करने से सूंडिया पानी में डूब कर मर जाती हैं।
- मैलाथियान 50 ई. सी. दवा का एक लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 500–800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करें तथा आवश्यकता पडने पर दोबारा छिडकाव करें।

4. गोभी की सूंडी (कैबेज बटरफलाई)

यह कीट फसल के पकते समय खासतौर पर करण राई में नुकसान पहुँचाता है। इसका लार्वा पौधे के मुलायम एवं कच्चे भागों को खाकर टहनियों को साफ कर देता है।

नियंत्रण

- कीट के प्रकोप से प्रभावित टहनियों को प्रारम्भिक अवस्था में ही तोड़कर नष्ट कर दें।
- इस कीट के नियंत्रण के लिए मैलाथियान 50 ई.सी दवा का एक लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 500–800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

5. बिहार हेयरी केटरपिलर

इस कीट का लार्वा पौधे के मुलायम एवं कच्चे भागों जैसे तना, टहनियाँ, पत्तियाँ, फूल, व फलियों को खाकर साफ कर देता है। कभी–कभी कीट का प्रकोप इतना अधिक होता है कि पौधों को पत्तिविहीन कर देते हैं। जिससे फलियां बनने की प्रक्रिया बाधित हो जाती है।

नियंत्रण

- इस कीट की सूंडियों को पकड़ कर नष्ट कर दें।
- इसकी रोकथाम हेतु मेलाथियान 50 ई.सी. की 1.0 लीटर मात्रा को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करें।

पेंटेड बग

एफिड

बिहार हेयरी केटरपिलर

14.2 रोग

1. अल्टरनेरिया ब्लाईट(झुलसा) रोग

यह रोग *अल्टेरनारिया ब्रेस्सिकोला* नामक कवक से होती है। इस रोग के रोग जनक, बीजाणु तथा कवक जाल के साथ बीमारी युक्त पौधों के कचरे तथा खरपतवारों में रहता है, जो अनुकूल मौसम में, जैसे तापमान (12–25 डिग्री सेल्सियस) नमी 70 प्रतिशत से अधिक तथा मध्यकालीन वर्षा में सक्रिय होकर फसल में रोग का संक्रमण करता है। मुख्यतः इस रोगजनक का संक्रमण नवम्बर से मार्च के बीच में होता है। इस रोग का रोग जनक सर्वप्रथम पौधे की पत्ती की निचली सतह पर संक्रमण करता है, जिससे पत्ती मे जगह–जगह रेखीय एवं गोल गहरे भूरे से काले रंग के परिगलित धब्बे बन जाते हैं। इन धब्बे में गोल छल्ले साफ नजर आते हैं। जो बाद में धीरे–धीरे बड़े हो जाते हैं। जब यह रोग अधिक बढने लगता है, तो इसका प्रभाव पौधे के अन्य भागों जैसे तना, फली, आदि पर दिखने लगता है। रोग ग्रसित फलियों में दाना सिकुड़ा व छोटा हो जाता है, जिससे पैदावार में कमी के अलावा तैलीय अंश भी कम हो जाता है। अत्यधिक प्रकोप की अवस्था मे धब्बे तने एवं फलियों पर भी बनते हैं व तनों का उपरी हिस्सा व फलियाँ जल–से जाते हैं। फली में इसका संक्रमण अधिक होने से बीज छोटे, भद्दे एवं तेल की मात्रा में कमी हो जाती है जिससे उत्पादन घट जाता है।

नियंत्रण

- इस रोग के नियंत्रण हेतु सरसों की बुवाई समय पर करें।
- पिछली फसल के अवशेषों को जला देने से भी आने वाले वर्षों में इस रोग के प्रकोप को कम किया जा सकता है।
- रोग ग्रसित पौधों को उखाड़ के जला दें।

- रोग के लक्षण दिखाई देने पर रिडोमिल एम जेड या मैन्कोजेब 75 डबल्यू पी 2 ग्राम/लीटर या मैटालैक्सिल 8 प्रतिशत का 200–300 लीटर पानी प्रति एकड़ का घोल बनाकर छिड़काव करें, यदि आवश्यकता पड़े तो छिड़काव दोबारा भी करते हैं।
- फसल पर ब्लाइटाक्स या इन्डोफिल एम–45 दवा का 2 ग्राम प्रति लीटर की दर से 500–800 लीटर पानी में घोल बना कर 75 दिन की फसल अवस्था से 15 दिन के अंतराल पर आवश्यकतानुसार 3–4 बार छिड़काव करें।

2. स्क्लेरोटिनिया स्टेम रोट (तना गलन) रोग

यह रोग *स्क्लेरोटिनीय स्क्लेरोटीओरूम* नामक कवक से होता है। इस बीमारी को श्वेत अथवा कालर गलन भी कहते हैं। इस रोग का प्रकोप होने पर तने पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं एवं ग्रसित पौधे अन्दर से पीले हो जाते हैं। इस रोग का भयंकर प्रकोप होने पर जमीन से 15–20 सेंटीमीटर की ऊँचाई से पौधे का तना बाहर से सफेद दिखाई देने लगता है, जिसको चीरने पर अंदर का भाग खाली निकलता है तथा उसमें से कोयले के छोटे टुकड़े जैसे स्केलोरेशिया नजर आते हैं। पौधा संक्रमण के पास से मुरझाकर लटक जाता है बाद में पूरा पौधा सड़कर गिर जाता है तथा पैदावार में भारी कमी आती है। इस रोग से ग्रसित पौधा बोना रह जाता है, पकने से पहले ही सूख जाते हैं एंव समय से पहले ही पक जाता है। ग्रसित पौधे पर फलियों में दानों का पूर्ण भराव नहीं होने से पैदावार में भारी नुकसान होता है। यह रोग भूमि के द्वारा फैलता है।

नियंत्रण

- जिस खेत में इस रोग का प्रकोप अधिक हो उस खेत में तीन साल तक लगातार सरसों की फसल ना लें।
- गर्मियों में खेतों की गहरी जुताई करें ताकि रोगाणु नष्ट हो जायें।
- जब इस रोग के लक्षण दिखाई देते हैं, तब तक उस पौधे पर नुकसान हो चुका होता है तथा उस समय कोई भी उपचार कारगर नहीं होता है। अतः जिन खेतों में यह बीमारी आती है, वहाँ पर इसके नियन्त्रण के लिए 70–80 दिन की फसल पर बाविस्टीन (कार्बेन्डाजीम 50 डब्ल्यू. पी.) दवा का 0.05–0.10 प्रतिशत का 200 से 300 लीटर पानी प्रति एकड़ की दर से घोल बना कर 10 से 12 दिन के अंतराल पर छिड़काव करने से इस बीमारी से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है।
- इसके नियंत्रण के लिए बीज को बाविस्टीन (कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत डब्ल्यू. पी.) दवा 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचारित कर बुवाई करें।
- इस रोग नियंत्रण हेतु सरसों की बुवाई 10 से 25 अक्टूम्बर तक करने से खड़ी फसल में रोग कम लगता है।

3. सरसों का जीवाणु सड़न रोग

यह रोग जैंथोमोनस कैम्पेस्ट्रिस नामक जीवाणु से होता है। इस रोग का प्रकोप होने पर तने पर भूमि की सतह से 8–10 सेन्टीमीटर ऊँचाई पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। जो तने के चारों तरफ फैल जाते हैं। रोग ग्रसित तना मुलायम व खोखला हो जाता है तथा रोग ग्रसित पत्तियों की नसे भूरी होकर फटने लगती हैं। रोग ग्रसित तने व पत्तियों से दुर्गन्धयुक्त पीला स्राव निकलता है।

नियंत्रण

- रोग दिखाई देने पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50 डबल्यू. पी. 3 ग्राम प्रति लीटर पानी या कार्बोक्सिन 75 डबल्यू. पी. 3 ग्राम प्रति लीटर पानी या स्टैप्टोसाइक्लिन 10 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

4. सफेद रोली

सरसों का सफेद रोली रोग *अलबूगो कैंडिडा* नामक कवक द्वारा फैलता है। इस बीमारी का संक्रमण मुख्यतः वातावरण की स्थिति पर निर्भर करता है। यह रोग मुख्यतः 15–25 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा 70 प्रतिशत से अधिक आर्द्रता पर प्रभावी होता है। इसके अतिरिक्त इस रोग की दो अवस्थायें होती हैं– पहली अवस्था में यह पौधों की पत्ती को संक्रमित करता है, लेकिन प्रणालीन अवस्था अथवा दूसरी अवस्था में मृदुरोमिल फफूंदी के साथ मिलकर पौधों को संक्रमित करते हैं। इस प्रकार के संक्रमण में पौधे का पुष्पक्रम विकृत होकर बाँझ हो जाता है, जिसके कारण बीज का आकार तथा उपज कम हो जाती है, जिससे किसान को अधिक हानि उठानी पड़ती है। इस बीमारी का संक्रमण पौधों की जड़ों को छोड़कर सभी वायवीय भागों पर देखने को मिलता है। इसका सर्वप्रथम संक्रमण पत्तियों की निचली सतह पर देखने को मिलता है। इसमें पत्तियों की निचली सतह पर हल्के भूरे रंग के घाव बन

जाते हैं जो सफेद–क्रीमी कवक जाल से घिरे रहते हैं। पत्तियों पर रोग का संक्रमण जनवरी से मार्च तक स्पष्ट रूप से देखा जाता है तथा कुछ समय बाद इस रोग के लक्षण पत्ती के उपरी भाग के अतिरिक्त अन्य भागों जैसे तना, पुष्पक्रम आदि पर भी दिखने लगते हैं।

नियंत्रण

- फसल की समय (15 सितम्बर से 15 अक्टूबर) पर बुवाई करनी चाहिए।
- रोग प्रतिरोधी एवं स्वस्थ प्रमाणित बीजों का प्रयोग करना चाहिए।
- पिछले साल के खेत में बचे फसल के कचरे तथा खरपतवारों को नष्ट करना चाहिए।
- फसल चक्र अपनाना चाहिए ताकि कीटों के जीवन चक्र को बाधित किया जा सके।
- बीजों को एप्रोन– 35 एस.डी. 6 ग्राम/किलोग्राम बीज तथा थायरम 2.5 ग्राम/किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित करना चाहिए।
- समय–समय पर खेत की देख–रेख करते रहना चाहिए ताकि पौधों में रोग के लक्षण दिखने पर तुरंत ही उपयुक्त रोकथाम की जा सके।
- रोग का प्रकोप फसल में अधिक होने पर मेन्कोजेब 75 प्रतिशत डब्लु.पी. का 2 ग्राम/लीटर पानी के साथ मिलाकर छिड़काव करना चाहिए तथा 15 दिन बाद उसका दो बार छिड़काव करना चाहिए।
- पोटाश की उपयुक्त मात्रा का प्रयोग करना चाहिए। रोग के प्रभावी नियंत्रण के लिए बीज को सर्वप्रथम 6 ग्राम/किलोग्राम एप्रोन से उपचारित करना चाहिए तथा उसके बाद बुवाई के 60 दिन बाद रिडोमिल एम.जेड का 5 ग्राम/लीटर पानी के साथ मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।
- बीज को मैटालैक्जिल–35 एस.डी. 6 ग्राम/किलोग्राम की दर से उपचारित कर बुवाई करें।
- अधिक नत्रजन उर्वरक का प्रयोग न करें।
- फसल की सिंचाई आवश्यकता से अधिक नही करें।
- इस रोग की रोकथाम हेतु रीडोमिल–एम. जेड 72 डब्ल्यू. पी. 2.0 ग्राम/लीटर अथवा मैन्कोजेब 2.5–3.0 ग्राम/लीटर पानी में घोल बनाकर रोग दिखाई देने पर छिड़काव करें।

5. डाउनी मिल्ड्यू (मृदुरोमिल आसिता) रोग

सरसों का डाउनी मिल्ड्यू रोग *पेरोनोस्पोरा परसिटिका* नामक कवक द्वारा फैलता है। पत्तियों की निचली सतह पर बैंगनी–भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो बाद मे बड़े हो जाते हैं। इन धब्बों पर बाद में रोग जनक की बैंगनी रंग की मृदुरोमिल वृद्धि रूई के समान दिखाई देती है। रोग की तीव्र अवस्था मे पुष्प कलियाँ कम हो जाती हैं व पुष्पांगों में अति वृद्धि या छितरापन या विकार आ जाता है।

नियंत्रण

- फसल चक्र अपनाना चाहिए ताकि कीटों के जीवन चक्र को बाधित किया जा सके।
- रोग का प्रकोप फसल में अधिक होने पर मेन्कोजेब 75 प्रतिशत डब्लु.पी. का 2 ग्राम/लीटर पानी के साथ मिलाकर छिड़काव करना चाहिए तथा 15 दिन बाद उसका दोबारा छिड़काव करना चाहिए।

6. छाछिया रोग, चूर्णिल आसिता रोग (पाउडरी मिल्ड्यू)

सरसों का पाउडरी मिल्ड्यू रोग *ऐरीसिफॅ पोलीगोनि* कवक द्वारा फैलता है। यह रोग मुख्यतः देरी से बोई गई फसल में अधिक नुकसान पहुँचाता है। इस रोग से ग्रसित पौधों के पूरे बाहरी भाग पर खड़िया नुमा सफेद चूर्ण सा फैल जाता है। ग्रसित पौधो की वृद्धि रूक जाने से पौधे बौने रह जाते हैं। इससे उपज में लगभग 17–25 प्रतिशत व तेल की मात्रा 6–7 प्रतिशत तक कमी आ सकती है।

नियंत्रण

- इस रोग के नियंत्रण हेतु सरसों की बुवाई समय पर करें।
- रोग से ग्रसित पौधो को उखाड़ के जला दें।
- इसके नियंत्रण के लिए बीज को एप्रोन–35 एस.डी. दवा 6 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से बीजोपचारित कर बुवाई करें।
- फसल मे रोग के लक्षण दिखाई देने पर सल्फर युक्त दवाईयाँ जैसे कि 0.2 प्रतिशत रिडोमिल या 0.1 प्रतिशत कैराथेन या 0.1 प्रतिशत सल्फेक्स का घोल बनाकर प्रति एकड 200–300 लीटर घोल का छिडकाव करें।
- डाएथेन एम–45 या घुलनशील गंधक 2.5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से 700–800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से इस रोग के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

सफेद रोली

मृदुरोमिल आसिता

तना गलन

15. सरसों की फसल मे पाला का प्रबंधन

जब तापमान 0 डिग्री सेल्सियस से नीचे गिर जाता है तथा हवा रूक जाती है, तो रात्रि को पाला पड़ने की संभावना रहती है। वैसे साधारणतः पाला गिरने का अनुमान वातावरण से लगाया जा सकता है। सर्दी के दिनों में जिस रोज दोपहर से पहले ठंडी हवा चलती रहे एवं हवा का तापमान जमाव बिन्दु से नीचे गिर जाये। दोपहर बाद अचानक हवा चलना बन्द हो जाये तथा आसमान साफ रहे, या उस दिन आधी रात से ही हवा रुक जाये, तो पाला पड़ने की संभावना अधिक रहती है। रात को विशेषकर तीसरे एवं चौथे प्रहर में पाला पड़ने की संभावना रहती है। साधारणतया तापमान चाहे कितना ही नीचे चला जाये, लेकिन यदि शीत लहर चलती रहे तो कोई नुकसान नहीं होता है। परन्तु यदि हवा चलना रुक जाये तथा आसमान साफ हो तो पाला अवश्य पड़ता है, जो सरसों की फसल के लिए बहुत नुकसानदायक है। पाले के प्रभाव से फसल को काफी क्षति का सामना करना पड़ता है, इससे फसल की उपज के साथ गुणवत्ता में भी कमी हो जाती है। पाले से होने वाले मुख्य प्रभाव निम्न हैं।

पाले के प्रभाव से सरसों की फसल में क्षति

- पाले के प्रभाव से पौधे का तना, पत्तियाँ, फूल व फलियाँ झुलस जाती हैं।
- क्षतिग्रस्त फलियों में विकसित हो रहे दाने झुलस जाते हैं, जिसके कारण फलियों मे दानों का विकास एवं नये दानों का बनना रुक जाता है।
- फूलों के झुलसने से पौधे में बंध्यता एवं परागकोश के विकास में ठहराव आ जाता है।
- झुलसने से पौधे की या झुलसे हुए भाग की मृत्यु भी हो जाती है।
- पाले से सरसों की उपज मे 95 प्रतिशत तक की हानि हो जाती है।

फसल को पाले से होने वाली क्षति से बचाने के उपाय

1. भूमि का चयन

पाले के प्रति संवेदनशील फसल उगाने के लिए ऐसी भूमि का चयन करना चाहिए, जो की पाले के लिए जमाव मुक्त हो। बड़े

जलाशयों के पास स्थान आमतौर पर पाले से कम ग्रस्त होते हैं क्योंकि पानी के ऊपर की हवा, भूमि के ऊपर की हवा की तुलना में कम तेजी से ठंडी होती है। ठीक से स्थापित वायुरोधी वृक्ष जलवायु को अनुकूल बना देते हैं जिसके कारण फसल समय से पहले परिपक्व हो जाती है और पाले का जोखिम कम हो जाता है। दबे हुए इलाके में वन क्षेत्रों में कमी कम ठंडी हवाओं को पलायन करने की अनुमति देती है जिस कारण पाले के जमाव के खतरे को कम किया जा सकता है।

2. मृदा प्रबंधन

मिट्टी की अवस्था फसल के ऊपर और नीचे के भागों को क्षति से बचाने के लिए एक उत्तरदायी कारक है। ढीली मिट्टी की सतह ताप के चालन में कमी करती है, इसलिए रात के समय ढीली मिट्टी की सतह का तापमान जमी हुई मिट्टी की अपेक्षा कम होता है। इसलिए पाले से बचाने के लिए जमीन को नहीं जोतना चाहिए। मिट्टी की नमी भी कुछ प्रतिकार असर रखती है। जरूरत से ज्यादा गीली मिट्टी के होने पर सूर्य की ऊर्जा का अधिकतम भाग नमी वाष्पन में चला जाता है, इस कारण रात में फसल के लिए गर्मी कम उपलब्ध रहती है। दूसरी ओर जरूरत से ज्यादा सूखी मिट्टी भी ताप की कम चालक होती है, जिससे वो ऊर्जा की कम मात्रा को ही संचित कर सकती है और इसलिए ये पाले का परिणाम दे सकती हैं।

3. फसल प्रबंधन

फसलों की ऐसी प्रजातियों और किस्मों का चयन किया जाना चाहिए, जो कि पाले के जमाव मुक्त अवधि के भीतर परिपक्व हो जाएं। पाला संवेदनशील फसलों को पाले के जमाव मुक्त अवधि के भीतर बोना और काटना चाहिए ताकि फसल को क्षति से बचाया जा सके। इस प्रकिया के कारण फसल अपेक्षाकृत कम जोखिम के आसपास अपना जीवनकाल पूर्ण कर देती है।

4. फसल के नीचे आवरण

यह विधि सतह से ताप की क्षति को कम कर देती है। इस विधि के उपयोग किये जाने वाले आवरण कई प्रकार के हो सकते हैं, जैसे– प्लास्टिक का आवरण, भूसे का आवरण।

पारदर्शी प्लास्टिकः– पारदर्शी प्लास्टिक 85 से 95 प्रतिशत तक सूर्य की विकिरणों को संचारित कर उन्हें मिट्टी तक पहुंचा सकती है, परन्तु उन्हें वापस वातावरण में जाने नहीं देती परिणामस्वरूप मिट्टी के तापमान में बढ़ोत्तरी होती है, जो पाले से सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसके विपरीत काली प्लास्टिक सूर्य की विकिरणों को अवशोषित करती है, जिससे मिट्टी का ताप बढ़ जाता, जो पाले से सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

भूसे का आवरणः– भूसे का आवरण दिन मे मिट्टी के द्वारा अवशोषित की गई सूर्य की विकिरणों को मिट्टी से बाहर जाने से रोकता है, जिसके कारण मिट्टी के तापमान में बढ़ोत्तरी होती है, जो पाले से सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

5. छिड़काव सिंचाई

जब पाला पड़ने की सम्भावना हो तब खेत में सिंचाई करनी चाहिये। नमीयुक्त जमीन काफी देरी तक गर्म रहती है, क्योंकि जब पानी बर्फ में जमता है तो इस प्रकिया में ऊर्जा का उत्सर्जन होता है, जो 80 कैलोरी प्रति ग्राम के बराबर होती है। जिस कारण मिट्टी के तापमान मे बढ़ोतरी होती है। इस प्रकार पर्याप्त नमी होने पर शीतलहर व पाले से नुकसान की सम्भावना कम रहती है। सर्दी में फसल में सिंचाई करने से 0.5 से 2 डिग्री सेल्सियस तक तापमान बढ़ाया जा सकता है।

6. गंधक छिड़काव

जिन दिनों पाला पड़ने की सम्भावना हों उन दिनों फसलों पर गंधक के तेजाब के 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिये। इसके लिए एक लीटर गंधक के तेजाब को 1000 लीटर पानी में घोलकर एक हेक्टेयर क्षेत्र में प्लास्टिक के स्प्रेयर से छिड़कना चाहिए। इस छिड़काव का असर दो सप्ताह तक रहता है। यदि इस अवधि के बाद भी शीत लहर व पाले की संभावना बनी रहे, तो गंधक के तेजाब को 15 दिन के अन्तराल में दोहराते रहें। सरसों, गेहूं चना, आलू मटर जैसी फसलों को पाले से बचाने में गंधक के तेजाब का छिड़काव करने से न केवल पाले से बचाव होता है, बल्कि पौधों में गंधक तत्व की जैविक एवं रसायनिक सक्रियता बढ़ जाती है, जो पौधों में रोग रोधिता बढ़ाने में एवं फसल को जल्दी पकाने में सहायक होती है।

7. धुएं का आवरण

धुएं का आवरण वातावरण के तापमान को बढ़ाने का काम करता है। अतः पिछली फसल के बचे हुए अवशेषों को रात में खेत के

चारों तरफ जला कर खेत पर धुएं का आवरण बनाकर भी फसल को पाले के नुकसान से बचाया जा सकता है। पर्यावरण प्रदूषण की दृष्टि से इस क्रिया को कम प्रोत्साहित करना चाहिए।

16. कटाई व मढ़ाई

कटाईः– सरसों की उचित पैदावार के लिए जब खेत में सरसों की फलियां 75 प्रतिशत के लगभग पीली/सुनहरी भूरी पड़ जायें तथा फली में दाने का रंग लाल हो जाये तब ही फसल की कटाई करें क्योंकि अधिकतर किस्मों में इस अवस्था के बाद बीज भार तथा तेल अंश में बढ़ोतरी नहीं होती है तथा देरी करने पर फलियों के बिखराव के कारण उपज में कमी हो जाती है। सरसों की फसल में बिखराव रोकने के लिए फसल की कटाई सुबह करनी चाहिए क्योंकि रात की ओस से सुबह फलियां नम रहती हैं तथा बीज का बिखराव कम होता है।

मड़ाई (गहाई):– जब बीज में औसतन आर्द्रता अंश 12–20 प्रतिशत हो जाये तब फसल की मड़ाई करनी चाहिए। फसल की मड़ाई थ्रेसर से ही करनी चाहिए क्योंकि इससे बीज तथा भूसा अलग–अलग निकल जाते हैं साथ ही साथ एक दिन में काफी मात्रा में सरसों की मड़ाई हो जाती है। बीज निकलने के बाद उनकों साफ करके बोरों में भर लेना चाहिए।

17. उपज

सरसों की अगेति प्रजातियाँ 14–16 क्विंटल तथा समय से बोई जाने वाली प्रजातियाँ 20–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर के अनुसार औसतन पैदावार देती हैं।

18. बीज के लिए प्रसंस्करण

वैज्ञानिक अध्ययनों के निष्कर्षों में यह पाया गया है कि केवल उन्नत किस्मों के बीजों के उपयोग करने से सरसों की उत्पादकता 15–20 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है। पर अभी भी देश में 70 प्रतिशत से अधिक किसान स्वयं का या दूसरे किसानों द्वारा उत्पादित फसलों के बीज को ही अगले साल बीज के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। किसानों को सरसों की उन्नत प्रजातियों का उन्नत बीज समय पर उपलब्ध हो सके। इसके लिए किसान उन्नत प्रजातियों का उन्नत बीज अपने खेत पर भी तैयार कर सकते हैं। इसके लिए किसान के खेत पर लगाई गई उन्नत प्रजातियों की फसल को काटने के बाद अच्छी प्रकार सुखाकर टैक्टर चलाकर अथवा थ्रेसर की सहायता से बीज को अलग करके पंखे से साफ करके बीज को अच्छी तरह सुखाने के बाद बीज की ग्रेडिंग करनी चाहिए। थ्रेसिंग ग्रेड़िंग करते समय मशीनों को अच्छी प्रकार साफ करना चाहिए ताकि किसी प्रकार बीज में मिश्रण की सम्भावना न रहे। सरसों की बीज को सुखाना भी अत्यंत आवश्यक है अन्यथा नमी के कारण बीज में कवक लग जाती है जिसके कारण बीज की गुणवत्ता गिर जाती है। प्रसंस्करण करते समय जाली का आकार बीज के आकार पर निर्भर करता है। सामान्यतः बारीक दाने वाली प्रजातियों के लिए नीचे की जाली का आकार 1.8 मि.मी. तथा मोटे दाने वाली प्रजातियों के लिए 2 मि.मी. से कम नहीं होना चाहिए। ग्रेडिंग करते समय हवा के दबाव का भी ध्यान रखना चाहिए। ग्रेडिंग के बाद बीज को 2.5 ग्राम थायरम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करके अगले साल बीज के रूप में प्रयोग के लिए रख सकते हैं।

19. सरसों के भूसे से कार्बनिक खाद बनाना

सरसों के भूसे से कार्बनिक खाद बनाने के लिए पहले एक आयताकार गड्ढा जिसकी लम्बाई 2 मीटर चौड़ाई 1.5 मीटर एवं गहराई 1 मीटर हो तैयार करते हैं। गड्ढे की दीवारो को भीतर से गोबर एवं भारी मिट्टी से अच्छी तरह लिपाई करें ताकि पानी का अन्दर रिसाव नहीं हो सके। इस गड्ढे में 80 किग्रा सरसों का भूसा 20 किग्रा ताजा गोबर 10 किग्रा भारी मिट्टी एवं 1 किग्रा यूरिया डालते हैं। इस मिश्रण को अच्छी तरह मिलाते हुए पानी का छिड़काव करते हैं तथा एक महीने बाद 1500–2000 केंचुए एवं 200 ग्राम ट्राइकोडर्मा विरिडी मिलाते हैं तथा ढ़क देते हैं। मिश्रण को 10–15 दिन बाद पलट दें तथा 25–30 प्रतिशत नमी बनाये रखें। इस विधि से 100 दिन में सरसों के भूसे से अच्छी कार्बनिक खाद बनकर तैयार हो जाती है।

20. सरसों के भूसे का पशु आहार में उपयोग

हमारे देश में पशु पालन में आने वाली सबसे प्रमुख बाधा पर्याप्त मात्रा मे गुणवत्ता चारा की कमी एवं इसकी समय पर उपलब्धता नही होना है। गुणवत्ता चारा की कमी एवं समय पर इसकी उपलब्धता न होने के कारण हर साल पशु पालकों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। जिस साल सूखा पड़ता है, उस साल यह समस्या और भी अधिक विकराल हो जाती है। तथा चारे के आभाव में

पशु पालको को अपने उत्पादक पशुओं को मजबूरी में सस्ती दरों पर बेचना पड़ता है। जिससे कभी–कभी छोटे एवं मध्यम वर्ग के पशु पालक परिवारों की अर्थव्यवस्था लम्बे समय के लिए चरमरा जाती है। गुणवत्ता चारा की कमी एवं इसकी समय पर उपलब्धता नहीं होने की समस्या अति गंभीर होने के बावजूद भी सरकार एवं किसान इस पर ज्यादा ध्यान नहीं दे रहे हैं एवं कम गुणवत्ता वाले चारे जैसे सरसों का भूसा इत्यादि का ऐसे ही अपव्यय कर रहे हैं। किसान सरसों के भूसे को या तो खुद जला देता है या मुफ्त में/बहुत कम कीमत पर औद्योगिक इकाई वालों को ईधन के लिए बेच देते हैं। हर साल हमारे देश में सरसों लगभग 6.2 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल पर उगाई जाती है जिससे लगभग 28 मिलियन टन भूसा मिलता है। तथा सरसों के कुल क्षेत्रफल का आधे से भी ज्यादा हिस्सा राजस्थान में है जिससे लगभग 13–15 मिलियन टन भूसा मिलता है जिसका किसान कोई खास फायदा नहीं ले पाता है। राजस्थान जैसा राज्य जहाँ किसान की अर्थव्यवस्था प्रमुख रूप से पशुपालन पर निर्भर है एवं हर दूसरे या तीसरे साल सुखा पड़ता है। सूखे के साल में पशु पालको को चारे के अभाव के कारण भारी नुकसान उठाना पड़ता है। इन परस्थितियों में जहा अन्य चारे की उपलब्धता नहीं हो वहाँ सरसों का भूसा पशुओं के लिये चारे का अच्छा विकल्प हो सकता है। सरसों का भूसा प्राय किसान को मार्च–अप्रैल में मिलता है एवं इसी समय से किसान के पास सूखे चारे की कमी होना प्रारंभ होती है। प्रायः सरसों के भूसे के बारे में यह धारणा है कि इसमें पोषक तत्व कम होते हैं एवं यह कठोर, विषैला, स्वादहीन व कम पाचकता वाला होता है जिससे इसे खिलने से पशु कमजोर व बीमार हो जाते हैं। इस कारण किसान सरसों के भूसे को ऐसे ही अपव्यय कर देते हैं। सरसों के भूसे को पशु चारे में प्रयोग करने की परियोजना पर केंद्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान अविकानगर के पशु पोषण विभाग के शोध एवं अनुभव के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि सरसों के भूसे में ऐसा कोई भी विषैला या हानिकारक तत्व उपस्थित नहीं है जो कि पशुओं के लिए नुकसान दायक हो। सरसों के भूसे की रासायनिक संरचना अन्य फसलों के भूसे के समान ही है जो तालिका 20.1 में दर्शाया गया है।

तालिकाः 20.1 विभिन्न प्रकार के भूसों में उपस्थित पोषक तत्वों का तुलनात्मक विवरण

पोषक तत्व (%)	गेहूं का भूसा	जौं का भूसा	धान का भूसा	गन्ने की खोई	सरसों का भूसा
कार्बनिक पदार्थ	88.6	94.2	83.1	95.0	87.7
कच्ची प्रोटीन	3.3	4.3	3.5	3.4	2.6
एन. डी. एफ.	79.8	80.9	72.0	70.1	80.0
ए. डी. एफ.	51.8	51.3	48.5	44.3	61.6
हेमी सेलुलोज	28.0	29.6	23.5	25.8	18.4
सेलुलोज	37.6	41.3	31.5	40.3	40.4
लिगनिन	9.6	9.8	9.7	3.3	14.2

सरसों का भूसा स्वादहीन एवं कम पाचकता वाला होता है जिस कारण इसे पशु कम खाते हैं। इस समस्या के समाधान के लिए संस्थान ने कई तकनीकियाँ विकसित की है जिनके प्रयोग से सरसों के भूसे की पाचकता एवं स्वाद बढाया जा सकता है जिनका विवरण निम्न प्रकार से है।

1. यूरिया उपचारः

इस विधि का प्रमुख उद्देश्य भूसे की प्रोटीन एवं उर्जा मान में वृद्धि करना है। ये उद्देश्य भूसे एवं सूखे चारे का यूरिया उपचार करने से पूरे हो जाते हैं। ऐसा दो कारणों से होता है। एक, यूरिया अमोनिया में बदलकर भूसे की पाचकता में वृद्धि करता है तथा दो, रोमन्थी पशुओं के रोमन्थ में पाए जाने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं, जो की भूसे के पाचन के लिए जिम्मेवार है, उनकी क्रियाशीलता के लिए अमोनिया एक अत्यंत महत्वपूर्ण पोषक तत्व है, वह यूरिया उपचारित भूसे के द्वारा उन्हें मिल जाती है। रोमन्थ में अमोनिया की उचित मात्रा में उपस्थित होने से इन सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ती है। जिस कारण से यूरिया उपचारित भूसे का अच्छा पाचन होता है। फलस्वरुप भूसे की पाचनशील प्रोटीन जो की अनुपचारित भूसे में शून्य होती है, वह बढ़कर 5–6 प्रतिशत तक हो जाती है जिससे इसके द्वारा प्राप्त कुल पाचक तत्व के प्रतिशत में वृद्धि होती है।

उपचार की विधिः

इस विधि द्वारा सरसों के भूसे के साथ ही साथ अन्य और सूखे चारों जैसे बाजरा कड़वी, ज्वार कड़वी, धान का पुआल आदि को भी उपचारित किया जा सकता है। इस तकनीक के द्वारा 50 किलोग्राम यूरिया खाद की बोरी से लगभग 12.5 क्विंटल भूसे या अन्य सूखे चारों का उपचार किया जा सकता है। उपचार करने के लिए एक क्विंटल भूसे या अन्य सूखे चारों को 2 मीटर या 3 मीटर के गोल घेरे या आयताकार में बिछाया जाता है। यदि संभव हो सके तो किसान भाई उपचार करने के लिए सुविधा अनुसार किसी भी माप की खाई या गड्ढा, चौकोर अथवा आयताकार आकार के खोद सकते हैं, जिसमे हमेशा उपचार किया जा सके। उपचार करने से पहले इनमें पॉलिथीन बिछा देनी चाहिए या फिर उसको अंदर से मिट्टी के लेप से लीप देना चाहिए। अब 4 किलोग्राम यूरिया खाद को किसी प्लास्टिक या लोहा के ड्रम में लगभग 50–60 लीटर साफ पानी में घोल बनाकर, भूसे की बिछी हुई परत पर छिड़काव किया जाता है। छिड़काव के बाद भूसे को पैरों से अच्छी तरह दबाया जाता है ताकि अंदर की हवा बाहर निकल जाये। फिर दबे हुए भूसे पर दुबारा दूसरी परत बिछा कर यूरिया घोल का छिड़काव कर पुनः पैरों से अच्छी तरह दबा कर अंदर की हवा बाहर निकल देना चाहिए। इस प्रकार एक के ऊपर एक परत बिछा दिया जाता है। तत्पश्चात उपचारित भूसे को पॉलिथीन की चादर से ढक दिया जाता है। पॉलिथीन के स्थान पर सूखी घास या यूरिया की खाली बोरी से बनी चादर से भी ढका जा सकता है। ढेरी का आकार गुंबदनुमा हो जिससे बरसात होने पर चारे को नुकसान ना पहुंचे। यदि संभव हो तो इस ढेरी को मिट्टी से लिपाई करके भी रखा जा सकता है क्योंकि किसान भाई आमतौर पर सूखे चारे, उपले आदि को इसी प्रकार से रखते हैं। तीन सप्ताह तक उपचारित भूसे को ऐसे ही रहने दिया जाता है। इस दौरान इसके अंदर यूरिया से अमोनिया गैस बनती है जो भूसे एवं अन्य सूखे चारे को अधिक पौष्टिक तथा पाचक बनाती है।

सारणीः 20.2 यूरिया उपचार का सरसों के भूसे के पोषक मान पर प्रभाव

पोषक तत्व (%)	अनुपचारित भूसा	उपचारित भूसा
प्रोटीन मान (%)	2.6	9.7
पचनीय प्रोटीन (%)	0.0	5.8
पाचकता (%)	21.8	27.6

पशुओं को यूरिया उपचारित भूसा कैसे खिलाएं ?

तीन सप्ताह बाद उपचारित भूसे की ढेरी को एक तरफ से खोला जाता है। इस उपचारित भूसे में अमोनिया गैस की तीखी गंध आती है तथा भूसे का रंग गहरा पीला हो जाता है। हाथ से पकड़ने पर यह मुलायम महसूस होता है। ढेरी में से उपचारित भूसा प्रतिदिन के लिए जितना आवश्यक हो उतना ही निकालना चाहिए और इसके बाद ढेरी को पुनः बंद कर देना चाहिए जिससे गैस अंदर ही रहे। उपचारित भूसे को पशुओं को खिलाने से पहले कम से कम एक या दो घंटे हवा में खुला छोड़ देते हैं जिससे अमोनियम गैस की गंध कम हो जाए। उपचारित भूसे को हरे चारे के साथ या अकेले ही उसी प्रकार से खिलाया जाता है जैसे किसान अन्य सूखे चारे को खिलाता है। आमतौर पर देखा गया है कि पशु शुरुआत में एक सप्ताह तक उपचारित भूसे को अच्छी प्रकार से नहीं खाते है परन्तु उसके बाद पशु उपचारित भूसे को काफी चाव से खाने लगते हैं तथा यह भूसा अन्य अनुपचारित भूसो से अधिक स्वादिष्ट लगता है।

किन किन पशुओं को यूरिया उपचारित भूसा खिलाया जा सकता है?

छह माह से ऊपर की उम्र के सभी पशु जैसे गाय, भैंस, भेड़, बकरी व ऊंट को उपचारित भूसा अकेले या दाना आदि मिलाकर खिलाया जा सकता है। पशु को उपचारित भूसे से अधिक लाभ मिले इसके लिए भूसे में लवण मिश्रण प्रति पशु 30 से 40 ग्राम भी देना चाहिए एवं इसे नियमित रूप से खिलाना चाहिए।

यूरिया उपचार के दौरान कौन–कौन सी सावधानियाँ प्रयोग में लानी चाहिए?

- यूरिया खाद की बताई गई मात्रा ही प्रयोग में लेनी चाहिए, अधिक मात्रा का इस्तेमाल करने से विषाक्तता हो सकती है जो कि

पशु की मृत्यु का कारण भी बन सकती है। यूरिया खाद के घोल को भी पशुओं की पहुंच से दूर रखना चाहिए। यूरिया खाद की मात्रा पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है अधिक मात्रा नुकसानदायक है

- यूरिया को पानी की बताई गई मात्रा में भली–भाँति घोलना चाहिए एवं सदैव साफ पानी का ही प्रयोग करना चाहिए।
- यूरिया का घोल भूसे के ऊपर समान रूप से छिड़कना चाहिए। ढेरी बनाते समय भूसे को अच्छी प्रकार से दबाना चाहिए।
- ढेरी को पॉलिथीन की चादर अथवा सूखी घास या यूरिया की खाली बोरी से अच्छी तरह ढक देना चाहिए। यदि उपचार गड्ढे में किया गया हो तो गड्ढे के ऊपर पॉलिथीन की चादर डालकर बाद में मिट्टी डाल देनी चाहिए।
- ढेरी से चारा सावधानी से निकालें और पुनः उसे ढक दें। अमोनिया को बहुत अधिक सूंघ लेने से बेहोशी आ जाती है। अतः उपचार ऐसी जगह ना करें जहाँ उठना–बैठना आना–जाना अधिक होता है।

लाभ

इस प्रकार यूरिया उपचार से भूसे, कड़बी आदि चारों की गुणवत्ता बढ़ा सकते हैं। यूरिया उपचारित चारे से पशु को अधिक पाचनशील पोषक तत्व मिलते हैं जिससे ना केवल पशुओं के दुग्ध उत्पादन में बढ़ोतरी होती है बल्कि उनकी सेहत भी अच्छी रहती है। यूरिया उपचारित भूसे को खिलाने से आधा से एक किलोग्राम तक दूध में वृद्धि हो जाती है यह इतनी ही दिए जाने वाले दाने की मात्रा बचाई जा सकती है।

2. कास्टिक सोडा उपचारः

यद्यपि यूरिया उपचार से सरसों के भूसे की गुणवत्ता में सुधार आता है, खास तौर पर नत्रजन की मात्रा में, परंतु इसमें उपस्थित लिगनिन–सेलुलोज की बंधता एवं अन्य अवयवों पर यूरिया उपचार का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता है जो कि ऊर्जा का मुख्य स्रोत हैं। यही लिगनिन–सेलुलोज अथवा लिगनिन–हेमीसेलुलोज कि बंधता भूसे की निम्न पाचकता के लिए उतरदायी है। भूसे की इस बंधता को तोड़ने एवं कमजोर करने के लिए सोडियम हाइड्रोक्साइड उपचार की अवधारणा का प्रादुर्भाव हुआ ताकि उपचारित भूसे का अधिकाधिक पशु के रोमन्थ में सूक्ष्मजीवों द्वारा उपयोग किया जा सके। सोडियम हाइड्रोक्साइड उपचार द्वारा तैयार भूसे पर किए गए प्रयोग से ज्ञात हुआ है कि भूसे में उपस्थित लिगनिन–सेलुलोज बंध प्रभावित हुए व उसकी पाचकता में आशातीत वृद्धि हुयी।

उपचार की विधिः

कास्टिक सोडा द्वारा उपचार करने के लिए थ्रेसर से प्राप्त सरसों का भूसा जिसका आकार लगभग 6–12 मि.मी. हो उपयुक्त रहता है। सबसे पहले प्रति 100 किलोग्राम भूसे के उपचार के लिए 2 प्रतिशत कास्टिक सोडा का 300 लीटर घोल तैयार कर लें। इसके बाद घोल में भूसे को भली–भाँति डूबा देना चाहिए तत्पश्चात 6 घंटे के बाद घोल को टंकी से बहा देना चाहिए और भूसे को पक्के फर्श, तिरपाल, पॉलिथीन आदि पर डालकर धूप में सुखा देना चाहिए। सूखने के बाद भूसे को पशुओं को खिलाने के लिए प्रयोग में ले सकते हैं।

सारणीः 20.3 कास्टिक सोडा उपचार का सरसों के भूसे के पोषक मान पर प्रभाव

पोषक तत्व (%)	अनुपचारित भूसा	उपचारित भूसा
प्रोटीन मान (%)	2.6	3.2
लिगनिन (%)	14.2	11.8
पाचकता (%)	21.8	31.0

लाभ

- उपचार द्वारा तैयार भूसे की पाचकता बढ़ जाती है। फलस्वरुप ऊर्जा की उपलब्धता पशु को अधिक होती है।

- पशुओं द्वारा भूसा अधिक मात्रा में खाया जाता है जिस कारण उन्हें अधिक पोषक तत्व प्राप्त होते हैं।
- उपचार के बाद भूसे का मुख्य चारे के रूप में उपयोग किया जा सकता है क्योंकि इसकी गुणवत्ता अन्य सूखे भूसों के समान हो जाती है।

सावधानियां

- कास्टिक सोडा का प्रयोग खुले हाथों से नहीं करना चाहिए।
- उपचारित भूसा गीली अवस्था में नहीं खिलाना चाहिए।
- कास्टिक सोडा का घोल सदैव बड़े ड्रम या सीमेंट की टंकी में ही बनाना चाहिए।

3. फफूंदी उपचारः

सरसों के भूसे में सेलूलोज की मात्रा अन्य प्रकार के सूखे चारों के समान ही होती है। सेलूलोज पादप शर्कराओं का प्रमुख भाग होता है। पशुओं की कोशिकाऐं सेलूलोज को विघटित करने वाले एंजाइम के उत्पादन में असक्षम होती है। परंतु उसके रोमन्थ में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीवो के द्वारा सेलूलोज को विघटित करने वाले एंजाइम पैदा किए जाते हैं। सेलूलोज के पाचन में लिगनिन नामक रसायनिक तत्व बाधक होता है। प्रकृति में लिगनिन को विघटित करने वाली फफूंदी की कुछ प्रजातियां पाई जाती हैं। जो लिगनिन का भक्षण कर भूसे के सेलूलोज को सूक्ष्मजीवों के उपयोग के लिए मुक्त करती हैं। फफूंदी उपचार से भूसे का पोषक मान बढ़ जाता है। तथा जब ऐसे भूसे को पशु को खिलाया जाता है तो उससे अधिक पोषक तत्व प्राप्त होते हैं फलस्वरुप उत्पादन में वृद्धि संभव है। सरसों के भूसे का भी फफूंदी द्वारा उपचार संभव है एवं प्रयोग से ज्ञात हुआ है कि अन्य सुखे चारों की तुलना में इस पर वृद्धि अच्छी होती है। सरसों के भूसे का फफूंदी द्वारा उपचार करने के लिए लगभग 70 प्रतिशत नमी तथा 7 से 21 दिन का उष्मायन फफूंदी की प्रजाति के अनुसार आवश्यक होता है।

उपचार विधिः

फफूंदी उपचार के लिए सर्वप्रथम भूसे में नमी का स्तर 70 प्रतिशत तक ले जाते हैं, तत्पश्चात भूसे के शुष्क भार का 10 प्रतिशीत के बराबर फफूंदी का बीज भूसे मे मिलाकर इसे पॉलिथीन की थैलियों अथवा ईंटों से बने जालीदार घेरे में भर दिया जाता है। इसके बाद कुछ दिनों में फफूंदी दिखाई देने लगती है एवं नियत समय के बाद ढेर के भूसे को फफूंदी सहित सूखा देते हैं। इस प्रकार तैयार भूसा पशुओं को खिलाने योग्य होता है। उदाहरणार्थ 10 किलोग्राम भूसे का उपचार करने के लिए लगभग एक बोतल (300 ग्राम) फफूंदी का बीज आवश्यक होता है। 70 प्रतिशीत नमी के लिए 8 लीटर पानी प्राप्त होता है। इसी पानी में 60 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट तथा 6 ग्राम कैल्शियम हाइड्रोक्साइड भी घोल देते हैं।

सारणीः 20.4 फफूंदी उपचार का सरसों के भूसे के पोषक मान पर प्रभाव

पोषक तत्व (%)	अनुपचारित भूसा	उपचारित भूसा
प्रोटीन मान (%)	2.6	7.7
लिगनिन (%)	14.2	11.8
पाचकता (%)	21.7	28.0

लाभ

- फफूंदी उपचार से भूसे की पाचकता एवं पोषक मान में वृद्धि होती है।
- फफूंदी के तन्तु भूसे मे ही रहने के कारण उसकी गुणवत्ता बढ़ जाती है।
- फफूंदी उपचारित भूसा मुलायम हो जाता है जिस कारण से पशु इसे अधिक चाव से खाते हैं।

सारणीः 20.5 विभिन्न उपचार विधियों का सरसों के भूसे के पोषक मान पर प्रभाव

पोषक तत्व (%)	अनुपचारित भूसा	यूरिया उपचार	कास्टिक सोडा उपचार	क्षारीये हाइड्रोजन परोक्साइड	फफूंदी उपचार
शुष्क पदार्थ	91.1	92.8	94.6	97.5	94.4
कार्बनिक पदार्थ	92.4	92.8	89.6	89.8	59.5
कच्ची प्रोटीन	2.6	9.7	3.2	3.2	7.7
एन. डी. एफ.	80.0	79.4	76.1	89.9	79.9
ए. डी. एफ.	61.6	62.3	65.3	85.5	72.9
हेमी सेलुलोज	18.4	17.1	10.8	4.4	7.0
सेलुलोज	40.4	42.6	48.4	69.2	35.3
लिगनिन	14.1	11.8	16.8	16.3	11.8
पाचकता	21.8	27.6	31.0	26.3	28.0

4. सरसों के भूसे पर आधारित संपूर्ण आहार की ईंटः

प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने के बाद भी सरसों के भूसे का पशु आहार में उपयोग नहीं के बराबर है। यदि यह भूसा पशुओं द्वारा खाया भी जाता है तो यह उसके पोषक तत्वों की दैनिक निर्वाह आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ है। अतः सरसों के भूसे के साथ दाने की कुछ न कुछ मात्रा अवश्य देनी होती है। ऐसे में पशु दाने को तो खा जाता है एवं भूसे को कम मात्रा में खाता है। इस समस्या के समाधान हेतु सरसों के भूसे पर आधारित संपूर्ण आहार की ईट बनाने के प्रयोग किए गये जिसमें सफलता भी मिली। संपूर्ण आहार की ईंट को जब पशुओं को खाने के लिए दिया गया तो स्वीकार्य थी एवं बहुत ही चाव से उन्होंने इसे खाया। जब संपूर्ण आहार की ईट का पशु द्वारा अंतग्रहण किया जाता है तो उन्हें भूसा एवं दाना एक निश्चित अनुपात में ही मिलता है जिस कारण से उसके रोमन्थ में उपस्थित सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है फलस्वरूप भूसे द्वारा अधिक पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। जिससे पशु की दैनिक निर्वाह आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती हैं एवं उत्पादन में वृद्धि संभव है।

सारणीः 20.6 (क) सरसों के भूसे पर आधारित संपूर्ण आहार की ईंट बनाने के लिए आवश्यक अवयव (प्रति 100 किलोग्राम):

अवयव	मात्रा
सरसों का भूसा/सुखा चारा	60 किलोग्राम
शीरा	5 किलोग्राम
दाना/रातिब मिश्रण	35 किलोग्राम

सारणीः 20.6 (ख) सरसों के भूसे पर आधारित संपूर्ण आहार की ईंट बनाने के लिए आवश्यक दाना/रातिब मिश्रण के लिए आवश्यक अवयव (प्रति100 किलोग्राम):

दाना/रातिब मिश्रण	मात्रा
सरसों की खली	23 किलोग्राम
मूंगफली की खली	23 किलोग्राम

गेहूं का चोकर	26 किलोग्राम
तेल रहित चावल की भूसी	26 किलोग्राम
खनिज लवण	1 किलोग्राम
नमक	1 किलोग्राम
वीटाब्लेनड	20 ग्राम

यदि सरसो का भूसा यूरिया उपचारित नहीं है तब प्रति 300 किलोग्राम संपूर्ण आहार ईंट बनाने के लिए उसमें 500 ग्राम यूरिया (खाद श्रेणी) उतनी ही मात्रा में सरसों का भूसा कम करके मिला देनी चाहिए। यूरिया को शीरा में घोलकर प्रयोग में लाना चाहिए।

सामग्रीः

सरसों के भूसे की संपूर्ण आहार ईंट बनाने के लिए थ्रेसिंग किया हुआ भूसा उपयुक्त रहता है। ईंट बनाने के लिए उपरोक्त अवयवों के अलावा क्षितिज यांत्रिकी मिक्सर व ईंट बनाने की मशीन की आवश्यकता होती है।

ईंट बनाने की विधिः

ईंट बनाने के लिए सर्वप्रथम भूसे को क्षितिज यांत्रिकी मिक्सर में डालते हैं उसके बाद उसमें दाना/रातिब मिश्रण डाल देते हैं। अब क्षितिज यांत्रिकी मिक्सर को सभी अवयवों के समान रुप में मिल जाने तक चलाते हैं। इस प्रकार से जितने भूसे की ईंट बननी है उसका मिश्रण तैयार कर लेते हैं। तत्पश्चात इस मिश्रण को ईंट बनाने की मशीन में डालकर 4000 पोण्ड प्रति इंच के दबाव पर ईंट तैयार की जाती है।

सम्पूर्ण आहार ईंट बनाने की मशीन

लाभ

- उच्च दबाव के कारण चारा व दाना आपस में अच्छी प्रकार से मिल जाता है जिसे पशु एक निश्चित अनुपात में ही दाने व चारे को खाता है जिससे रोमन्थ में इसका किण्वन उचित प्रकार से होता है। फलस्वरुप उसे पोषक तत्व की अधिक आपूर्ति होती है।
- तैयार की गई ईंट भूसे की अपेक्षा एक तिहाई स्थान ही घेरती है जिसको रखने एवं एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में सुविधा रहती है।
- यदि आवश्यक हो तो ईंट बनाने के दौरान रोगों से बचाव की दवा भी मिलाई जा सकती है।
- ऊर्जा व प्रोटीन के तारतम्ये के कारण पशु आहार की स्वादिष्टता एवं पाचकता में बढ़ोतरी होती है।
- पशुओं द्वारा चारे की अपव्यता कम होती है।
- इस विधि से जहाँ पर भूसे आदि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है वहा से ईंट बनाकर अकालग्रस्त या अभावग्रस्त क्षेत्र में आसानी से पहुंचाया जा सकता है।

सावधानियाँ

- चारे व दाने का मिश्रण बनाने में यदि यूरिया खाद का प्रयोग कर रहे हैं तो यूरिया को पहले शीरे की निश्चित मात्रा में भली–भांति मिला देना चाहिए।
- यदि पशु ईंट को प्रारंभ में न खाये तो उन्हें ईंट को तोड़ कर खिलाना चाहिए।
- क्षितिज यांत्रिकी मिक्सर व ईंट बनाने की मशीन पर पूर्ण सतर्कता से काम करना चाहिए।

21. संदर्भ

लोकेश कुमार जैन, 2016। ओरोबैंकी का प्रबन्धन। प्रसार दूत **21** (2): 27–31।

गोपाल लाल चौधरी, कुलदीप सिंह राणा एवं कैलाश प्रजापत, 2012। सरसों की उन्नत खेती। प्रसार दूत **16** (4): 07–11।

अनन्ता वशिष्ठ, रवीन्द्र सिंह एवं देब कुमार दास, 2012। रबी की फसल में भरपूर उपज प्राप्त करने के लिए मौसम सम्बन्धित सलाह। प्रसार दूत **16** (5): 16–18।

अनन्ता वशिष्ठ एवं रवीन्द्र सिंह, 2015। सरसों की फसल पर मौसम की विविधता का प्रभाव। प्रसार दूत **19** (3): 19–21।

अविनाश गोयल, अनन्ता वशिष्ठ एवं राजकुमार धाकड़, 2016। सर्दी में फसलों को पाले से बचाने के सरल उपाय। प्रसार दूत **21** (4): 16–18।

नविन्दर सैनी, नवीन सिंह, सुजाता वासुदेव, सतीस चंद गिरी, भगवान दास, मिथिलेश नारायण, मुकेश कुमार ढिल्लो एवं देवेन्द्र कुमार यादव, 2016। विभिन्न बिजाई अवस्थाओं के लिए राया–सरसों की उन्नत किस्में एवं उत्पादन तकनीक। प्रसार दूत **21** (3): 34–40।

नविन्दर सैनी, नवीन सिंह, सुजाता वासुदेव, सतीस चंद गिरी, भगवान दास, मिथिलेश नारायण, मुकेश कुमार ढिल्लो एवं देवेन्द्र कुमार यादव, 2015। विभिन्न बिजाई अवस्थाओं के लिए राया–सरसों की उन्नत किस्में एवं उत्पादन तकनीक। प्रसार दूत **19** (3): 12–18।

देवेन्द्र कुमार यादव, नवीन सिंह, सुजाता वासुदेव, महेन्द्र सिंह यादव, सतीश चंद गिरी, भगवान दास, राजेन्द्र सिंह, मिथिलेश नारायण एवं कुम्बले विनोद प्रभु, 2013। सरसों की फसल में अधिक पैदावार के लिए विभिन्न अवस्थाओं पर की जाने वाली उन्नत कृषि क्रियाएँ। प्रसार दूत **17** (6): 05–09।

देवेन्द्र कुमार यादव, सुजाता वासुदेव, नवीन सिंह, सतीश चंद गिरी, भगवान दास, मिथिलेश नारायण एवं कुम्बले विनोद प्रभु, 2014। राया की अगेती बुआई के लिए कम अवधि में पकने वाली किस्में – तोरिया का विकल्प। प्रसार दूत **18** (3): 07–11।

देब कुमार दास, जितेन्द्र सिंह और रवीन्द्र सिंह, 2011। सरसों की फसल में शाखाओं की छटाई– एक लाभदायी प्रौद्योगिकी। प्रसार दूत **15** (4): 15–16।

डायरेक्टरेट ऑफ रेपसीड–मस्टर्ड रिसर्च (इंडियन कौंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च) सेवर, भरतपुर, 2015। विजन–2050, डॉक्यूमेंट। www-drmr-res-in

संयुक्त निदेशक कृषि (विस्तार) जयपुर खण्ड, दुर्गापुरा, जयपुर, कृषि विभाग राजस्थान, 2016। प्रमुख रबी फसलों की उन्नत कृषि विधियाँ। खण्ड –3 ए, जयपुर, रबी–2016–2017।

ज्ञानेन्द्र सिंह, रमेश चन्द, चन्दू सिंह एवं संजय कुमार, 2017। सरसों फसल का मूल आधार–उन्नत बीज। प्रसार दूत **22** (3): 6–15।

रवीन्द्र सिंह, अनन्ता वशिष्ठ एवं देब कुमार दास, 2012। सरसों की फसल में मौसम आधारित प्रबंधन। प्रसार दूत **16** (5): 19–21।

राजवीर शर्मा एवं पंकज, 2011। रबी फसलों में खरपतवार नियंत्रण। प्रसार दूत **15** (4): 28–31।

जितेन्द्र सिंह, अमित सक्सेना, अमरेश मिश्रा, देब कुमार दास और रवीन्द्र सिंह, 2013। सरसों की फसल में समेकित नाशीजीव प्रबंधनः एक लाभदायी प्रौद्योगिकी। प्रसार दूत **17** (6): 27–30।

मनोज कुमार त्रिपाठी, आनन्द शेखर मिश्र, असीम कुमार मिश्र, राजेन्द्र प्रसाद, रमेश चन्द्र जखमोला 2002। सरसों के भूसे का पशु आहार में उपयोग। टेक्नीकल बुलेटिन, सी. एस. डबल्यू. आर. आई., अविकानगर, पेज न.1–20।

मनमोहन पूनिया, अनिल कुमार चौधरी, विजय पूनिया, आर.एस. बाना एवं हरीश कुमार, 2015। शुष्क एवं बारानी क्षेत्रों में सरसों की उन्नत खेती। प्रसार दूत **19** (3): 22–25।

ए. एस. मिश्रा, एम. के. त्रिपाठी, ए. के. मिश्रा, एस. वैथियानाथान, आर. प्रसाद, आर. सी. जखमोला 2007। बायोकन्वर्शन ऑफ मस्टर्ड स्ट्रॉ बाय वाइट रॉट फंगस अंडर सॉलिड स्टेट फर्मेंटेशन फॉर रुमिनंट फीडिंग। टेक्नीकल बुलेटिन, सी. एस. डबल्यू. आर. आई., अविकानगर, पेज न. 1–26।

नोट